महाराणा प्रताप

डा० भवान सिंह राणा

भारतीय ग्रन्थ निकेतन
2713 कूचा चेलान, दरिया गंज
नई दिल्ली-110002

दो शब्द

देशप्रेम, त्याग, बलिदान, संघर्ष आदि गुणों के प्रतीक महाराणा प्रताप भारतवासियों के लिए श्रद्धा तथा अभिमान का विषय बन गये हैं। उनका नाम लेते ही मुगल साम्राज्य की सत्ता को चुनौती देने वाले वीरता के ओज से परिपूर्ण एक अप्रतिम वीर योद्धा का बिम्ब हमारे मस्तिष्क में अनायास ही मूर्त रूप धारण कर लेता है। स्वतन्त्रता हेतु विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने जो संघर्ष किया, उसकी सामान्य लोगों से कल्पना भी नहीं की जा सकती। मेवाड़ नरेश होते हुए भी उनके जीवन का अधिकांश भाग वनों और पर्वतों में इधर से उधर भटकते हुए व्यतीत हुआ। अपनी अदम्य इच्छा शक्ति और अपूर्व रण कौशल से अन्ततः वह मेवाड़ को स्वाधीन कराने में समर्थ हुए।

भौतिक [illegible] की उपेक्षा करते हुए मातृभूमि की [illegible] लिए उनका अनवरत संघर्ष इतिहास [illegible] उनके समान व्यक्तित्व देश एवं [illegible] होते हैं। आज [illegible] होती जैसी [illegible] र का जीवन [illegible] वह मातृभूमि की [illegible] र [illegible] स्मरणीय और वन्दनीय

इस पुस्तक की सामग्री संकलन के लिए डॉ० गौरी शंकर हीराचन्द ओझा, महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदास (वीरविनोद), डॉ० गोपीनाथ शर्मा, डॉ० आशीर्वादीलाल, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, कर्नल टॉड, डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, श्री राजेन्द्र बीड़ा, श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट आदि इतिहासविद विद्वानों की पुस्तकों से सहायता ली गई है। इन सभी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।

—भवानीसिंह राणा

विषय सूची

प्रथम अध्याय

मेवाड़ और उसका राजवंश

राजपूताने का भारतीय इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान रहा है। यहां के रणबांकुरों ने देश, जाति तथा स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने में कभी संकोच नहीं किया। उनके इस त्याग पर समस्त भारत को गर्व रहा है, वीर रस रंजित इस भूमि में राजपूतों के छोटे-बड़े अनेक राज्य रहे, जिन्होंने भारतीय इतिहास में अनेक उज्ज्वल अध्यायों की रचना की। इन्हीं राज्यों में मेवाड़ का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है, जिसमें इतिहास के गौरव बप्पारावल, खुमाण प्रथम महाराणा हम्मीर, महाराणा कुम्भा, महाराणा सांगा तथा प्रस्तुत पुस्तक के चरितनायक वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप जैसे इतिहास निर्माता महान् वीरों ने जन्म लिया।

मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति

मेवाड़ का इतिहास इस राज्य के प्रारम्भ से ही अत्यन्त गौरवशाली रहा है। मध्यकाल में यहां के शासकों तथा जनता ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए मुसलमान सुल्तानों के विरुद्ध जो संघर्ष किये, वह इतिहास में अद्वितीय माना जाता है। इस राज्य के इतिहास में वीरता, त्याग, बलिदान तथा स्वतन्त्रता प्रेम का एक अद्भुत समन्वय दिखायी देता है। इसकी इस विशिष्टता का एक महत्त्वपूर्ण कारण इसकी भौगोलिक स्थिति को भी माना जाता है। मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति शेष राजस्थान से पर्याप्त भिन्न है। इसकी स्थिति 23.49° से 25.58° उत्तरी अक्षांश तथा 73.1° से 75 49° दक्षिणी देशान्तर तक है। वर्तमान काल में यह राज्य भीलवाड़ा, चित्तौड़ और उदयपुर में विभक्त है।

इसके पूर्व मे नीमच, टोक, कोटा तथा बूंदी, दक्षिण में डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़, दक्षिण-पश्चिम में ईडर, पश्चिम मे जोधपुर और सिरोही, उत्तर में अजमेर, मेरवाड़ा और भीलवाड़ा का कु[illegible] स्थित है।

मेवाड़ को चार प्राकृतिक भागों[illegible]

(1) पश्चिमी पर्वतमाला।

(2) पूर्वी पठार।

(3) दक्षिणी पर्वतमाला।

दक्षिण की पर्वतमाला प्रदेश मे छापन तथा मगरे जिले के जंगल तथा पहाडिया सम्मिलित हैं। यह भाग गुजरात की सीमा से मिला हुआ है। इसमे पहाडियों की घाटियों के बीच छोटे-छोटे गाव हैं। गुजरात की ओर से इसी प्रदेश से मेवाड पर आक्रमण हुए थे। यहा से वन्य सम्पदा तथा खनिज पदार्थों की प्राप्ति भी होती है। यहा महुआ, सागवान, इमली, पीपल, सीसम, खजूर, जामुन आदि के वृक्षो की बहुलता हैं। हल्दी घाटी युद्ध के बाद महाराणा प्रताप ने इसी प्रदेश मे स्थित चावण्ड को अपनी राजधानी बनाया था। कहा जाता है कि पहले जावर से तीन लाख रुपये वार्षिक की चादी निकलती थी और यहा कई तावे की खानें भी थी। आज भी यहा निर्माण कार्य तथा चक्की बनाने का पत्थर अत्यधिक मात्रा मे पाया जाता है।

चित्तौड़, राजसमन्द, भीलवाडा, उदयपुर, नाथद्वारा और मगरा जिले के बीच का भू-भाग मध्यवर्ती मैदानी भाग कहा जाता है। इस भाग मे कई महत्त्व-पूर्ण नदिया बहती हैं और मेवाड के इतिहास के कई महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थान भी इसी भू-भाग मे हैं।

पहाडी भागो से निकली नदिया मैदानी भाग की कृषि के लिए वरदान का कार्य करती हैं। मेवाड के उत्तर मे एक खारे पानी की नदी है, जो अजमेर के निकट बनास नदी से मिल जाती है यही नदी अजमेर और मेवाड प्रदेश की विभाजक रेखा है। बनास मेवाड की सबसे बडी नदी है, जो कुम्भलगढ के पास एक स्थान से निकलती है। इसकी लम्बाई प्राय 290 कि. मी है कोठारी, मेनाल, बेडच आदि सहायक नदियों को अपने मे समाहित कर यह रामेश्वर तीर्थ(मध्य प्रदेश) मे चम्बल से मिल जाती है। हल्दी घाटी का प्रसिद्ध युद्ध इसी नदी के तट पर खमनोर के पास हुआ था। गम्भीरी, बेडच, अहाड, जाकुम, साकल आदि मेवाड़ की अन्य नदिया है। जाकुम और साकल मे वर्षा ऋतु मे ही अधिक पानी रहता है। इनका पानी भारी तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। बाढ आ जाने पर इन नदियों से जन-धन की भारी हानि होती है, किन्तु बाह्य आक्रमणों से ये नदिया वर्षा ऋतु मे मेवाड की रक्षा का साधन भी बन जाती थी। राणा कुम्भा के समय मालवा के सुल्तान को कई बार इन्ही नदियो के कारण पराजय का मुह देखना पडा था।

मेवाड़ की जलवायु सामान्यतया यहां के निवासियों के लिए सुखकर है,

किन्तु बाहरी लोगों के लिए यह अनुकूल नहीं रहती। पर्वतीय क्षेत्रों की जलवायु मैदानी क्षेत्रों की तुलना में अधिक अस्वास्थ्यकर है। ग्रीष्म ऋतु में यहां गर्मी का इतना प्रकोप होता है कि प्रायः बाहर के लोगों के लिए असहनीय हो जाती है। हल्दी घाटी युद्ध में अपने अनुभव का वर्णन करते हुए बदायूनी ने लिखा है कि 'दोपहर में इतनी गर्मी थी कि उसकी खोपड़ी का खून उबलने लगा था।' फलस्वरूप यह जलवायु आक्रमणकारी शत्रु सैनिकों को हराने अथवा हतोत्साहित करने में मुख्य भूमिका निभाती थी।

मेवाड़ में इन प्राकृतिक सुरक्षा साधनों के साथ ही झीलों की भी बहुलता है। अतः इस भू-भाग को झीलों का प्रदेश भी कहा जाता है। महाराणा जयसिंह ने उदयपुर से लगभग 51 कि० मी० दूर जयसमुद्र नामक विशाल झील का निर्माण कराया, जो मेवाड़ की सबसे बड़ी झील है। राजसमुद्र, उदयसागर, पिछोला, फतहसागर और स्वरूपसागर, अन्य झीलें भी इसी क्षेत्र में हैं।

यद्यपि मेवाड़ का इतिहास राजपूत राजाओं का इतिहास रहा है, किन्तु यहां की भील जाति का भी इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भील मेवाड़ के गहन वनों की एक वीर जाति रही है। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि और पशु पालन होते हुए भी इन्होंने समरभूमि में अपनी वीरता का सुन्दर परिचय दिया। महाराणा प्रताप के साथ मुगलों के युद्धों में भीलों ने प्रताप को जिन विषम परिस्थितियों में सहायता की उनका यह कार्य इतिहास में वीरता, स्वामीभक्ति, निःस्वार्थता आदि गुणों का अद्वितीय उदाहरण है।

मेवाड़ के लिए समय-समय पर विभिन्न नामों का प्रयोग हुआ है। विक्रमी संवत् 1000 के आहड़ के शिलालेख तथा अन्य प्राचीन साहित्य में इसका नाम 'मेदपाट' मिलता है। मेदपाट शब्द का ही प्रचलित रूप आज मेवाड़ हो गया है। डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के मत के अनुसार इस भूभाग में मेद (मेव या मेर) जाति का अधिकार रहा। अतः इसका नाम मेदपाट पड़ा। [illegible] के लेख से यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में मेवाड़ का नाम [illegible] भी था। 300 वर्ष पूर्व विक्रमी के [illegible] से प्रमाणित होता है कि इसका तत्कालीन नाम 'शिवि जनपद' था। अतः इसका मेदपाट नाम क्यों पड़ा, इस विषय में विद्वान किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे। डा० ओझा ने और [illegible] ने इसका सम्बन्ध जोड़ते हुए लिखा है कि मेवाड़ का [illegible] नाम मेदपाट तथा

दूसरा भाग मेरवाड़ कहा जाता है किन्तु किसी जाति विशेष से समस्त मेवाड़ मेव या मेर जाति का देश कहा जाए, यह बात तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती। इस विषय में डा० गोपीनाथ शर्मा लिखते हैं—

"डा० ओझाजी का कहना है कि इस देश पर पहले मेद अर्थात मेव या मेर जाति का अधिकार रहने से इसका नाम मेदपाट पड़ा।" इस तर्क कि पुष्टि में वे लिखते हैं कि "इसलिए मेवाड़ का एक भाग मेवल तथा दूसरा भाग मेरवाड़ा कहलाता है। हमारे विचार से एक जाति विशेष से सारा मेवाड़ मेद या मेव जाति का देश नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त यहां सर्वविदित है कि यहा अन्य जातियां भी प्राचीन काल में प्रभावशाली रही। हैं वास्तव में यह नाम मेवाड़ के परम्परागत शौर्य से सम्बन्धित है। मेद का अर्थ म्लेच्छ से है। और पाट का अर्थ शत्रु के विनाश से है। हम जानते हैं कि मेवाड़ सदियों में शत्रु से टक्कर लेता रहा और उसका विध्वंस करता रहा।"

वस्तुत. मेदिनी के समान ही मेदपाट की व्युत्पत्ति भी समझी जा सकती है। पौराणिक कथाओं के अनुसार भगवान द्वारा मारे गए असुर की मेदा(चर्बी से मेदिनी (पृथ्वी) का निर्माण हुआ था। इसी प्रकार यहा मेदा का लाक्षणिक अर्थ वीर शत्रुओं के मृत शरीर लेना उचित होगा। इस प्रकार मेदपाट का अर्थ होगा ऐसी भूमि, जिसे शत्रुओं का विनाश करके उनसे पाट दिया गया हो।

मेवाड़ का राजवंश

ईसा से कई शताब्दी पूर्व भी मेवाड़ में जनजीवन का अस्तित्व था, इस बात के प्रमाण मिलते हैं। आहाड़ की खुदाई से पता चलता है कि यहा उस काल में भी नदियों के तट पर मानव बस्तियां थीं। आहाड़ का समय ईसवी पूर्व दूसरी से पहली शताब्दी तक माना जाता है। इन सब से स्पष्ट है कि मेवाड़ भूमि का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। महाराणा प्रताप के पूर्वजों ने इस भूमि पर सर्वप्रथम छठी शताब्दी में राज्य की स्थापना की। इस वंश का प्रथम शासक, जिसने यहां नवीन राजवंश आधारशिला रखी, गुहादित्य था। इसलिए इस वंश का प्रारम्भिक नाम गुहिल या गुहिलोत वंश है। इसी की एक शाखा बाद में सिसोदिया वंश भी कही गई

गुहादित्य का मूल स्थान वल्लभी राज्य था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात्

उसे बलभी छोड़नी पड़ी। वहा से भागकर वह ईडर होता हुआ नागदा पहुंचा तथा नागदा से उसने मेवाड़ पर आक्रमण किया और इसे जीत लिया। फिर उसी ने यहां नवीन राजवंश की स्थापना की। यह वंश परम्परा से सूर्यवंशीय राजा राम के पुत्र कुश की सन्तान माना जाता है। गुहादित्य के बाद इस वंश में आगे चलकर महान् प्रतापी राजा कालभोज हुआ, जिसका दूसरा नाम बप्पा या बापा रावल भी है। उसने चित्तौड़ के तत्कालीन शासक मानसिंह को युद्ध में पराजित कर चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार चित्तौड़ भी मेवाड़ राज्य का भाग बन गया। बप्पा रावल का शासनकाल सन् 734 से 753 ई० तक माना जाता है। उसे विदेशी आक्रान्ता अरबों से मातृभूमि की रक्षा करने वाला अप्रतिम वीर माना जाता है, जिसे मेवाड़ राजवंश गौरव से स्मरण करता है। बप्पा रावल के पश्चात् उसका वंशज खुमाण द्वितीय हुआ, जो एक प्रसिद्ध शासक था। उसका शासनकाल सन् 812 से 836 ई० तक, प्रायः चौबीस वर्ष रहा। (अनेक इतिहास वेत्ताओं का मत है कि अरबों से देश की रक्षा वस्तुतः खुमाण प्रथम ने की; न कि बप्पा रावल ने। सम्भवतः उसने गुजरात और काठियावाड़ के शासकों के साथ मिलकर अरब आक्रमणकारियों को मुल्तान और सिन्ध में पराजित किया तथा आगे बढ़ने से रोका।)

खुमाण द्वितीय की कई पीढ़ियों बाद सन् 1191 ई० में मेवाड़ पर उसके वंशज सुमेरसिंह का शासन था। इसी समय शहाबुद्दीन गोरी ने भारत पर आक्रमण किया था। सुमेरसिंह का आठवां वंशज रत्नसिंह था, जिसकी पत्नी का नाम पद्मिनी कहा जाता है। अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण के समय रानी पद्मिनी के जौहर व्रत की कथा अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसी रानी पद्मिनी के जीवन से प्रेरणा लेकर सुप्रसिद्ध सूफी सन्त मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत महाकाव्य की रचना की, जो हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि है, किन्तु विचित्र बात यह है कि इतिहास में पद्मिनी तथा उसके द्वारा किये गये जौहर व्रत का कहीं उल्लेख नहीं है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक लोक कथाओं की तरह पद्मिनी की कथा को भी अप्रमाणित तथा किंवदन्ती मात्र ही माना जाता है।

खुमाण द्वितीय की कई पीढ़ियों बाद इस वंश में हमीर नाम का शासक हुआ, जो इस वंश के सभी शासकों में एक मात्र उल्लेखनीय शासक था।

का प्रमुख स्तम्भ बन गया।

कभी-कभी सुन्दर उपजाऊ भूमि में भी कँटीली झाड़ियाँ उग आती हैं, जो उस भूमि का नाश कर डालती हैं। ऐसा ही राणा कुम्भा के साथ हुआ। इस पराक्रमी और गुणवान राजा की उसी के पुत्र उदा ने हत्या कर दी। उदा एक अयोग्य और अनुदार शासक सिद्ध हुआ। फलतः राज्य के सभी सामन्त उसके विरोधी बन गए। उन्होंने उदा के छोटे भाई रायमल को मेवाड़ का शासक बनाने का निश्चय किया, जो उस समय अपने ससुराल ईडर में था। सभी सामन्तों ने रायमल का साथ दिया। तो भी उदा भला सामन्तों से कहां सहमत होता। अतः रायमल के नेतृत्व में सभी सामन्तों की सेना का उदा की सेना से युद्ध हुआ। दाड़िमपुर, जावी, पानगढ़ और चित्तौड़ सभी स्थानों पर उदा को पराजय का मुंह देखना पड़ा। अन्त में 1473 ई० में रायमल का सम्पूर्ण मेवाड़ पर अधिकार हो गया। रायमल एक योग्य शासक था। वह अपने पूर्व शासकों के समान माण्डू आदि के शासकों से युद्ध करता रहा, किन्तु दुर्भाग्य से रायमल को अपने पुत्रों, भाई तथा भतीजों के विरोध का भी सामना करना पड़ा। इस घर की फूट से मेवाड़ की आन्तरिक दशा का दयनीय हो जाना स्वाभाविक था। इस स्थिति में, जबकि मेवाड़ की अर्थव्यवस्था चरमरा जैसी गई थी। सौभाग्य से उसकी बाहरी प्रतिष्ठा बनी रही। इस समय दिल्ली पर सिकन्दर लोदी का शासन था, जो अपने निकटस्थ विरोधियों का ही दमन करने में

ध्यम्न था। वह एक योग्य एवं दूरदर्शी शासक था, अतः उसने मेवाड़ से उलझना उचित नहीं समझा। मालवा और गुजरात के शासक भी दिल्ली के सपने देख रहे थे। इसलिए रायमल को इनके युद्धों का भी सामना नहीं करना पड़ा, साथ ही इनसे पूर्व के दोनों शासक मेवाड़ पर युद्ध करके भारी हानि उठा चुके थे, अतः अभी मेवाड़ से उलझना उचित नहीं समझते थे।

इन विषम परिस्थितियों में 4 मई 1508 को मेवाड़ के राजसिंहासन पर राणासंग्राम सिंह का अभिषेक हुआ, जो भारतीय इतिहास में राणा सांगा के नाम से प्रसिद्ध है। सिंहासन पर बैठते समय राणा सांगा की अवस्था सत्ताईस वर्ष था। शासन सत्ता सम्भालते ही राणा सांगा ने सर्वप्रथम मेवाड़ के उन प्रदेशों पर अधिकार करने का विचार किया, जो राणा कुम्भा के बाद अन्य राज्यों के अधिकार में चले गए थे। उसने मालवा के सुल्तान महमूद को हराकर बन्दी बना लिया तथा रणथम्भौर, कालपी, गागरौन, भिलसा और चन्देरी पर अपना अधिकार कर लिया। इस विजय से उसका उत्साह बढ़ा और दिल्ली के सुल्तान के कुछ प्रदेशों पर उसने अधिकार कर लिया। गुजरात राज्य को उसने लूटकर छोड़ दिया। सम्पूर्ण राजपूताना के तथा कुछ अन्य शासकों ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

राणा सांगा भारतीय इतिहास का एक अप्रतिम वीर और परम देशभक्त शासक था, किन्तु उसके द्वारा बाबर को भारत पर आक्रमण का निमन्त्रण दिया जाना निश्चय ही उसके यश को कम कर देता है। उसने दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी को पराजित करने के लिए बाबर को आमन्त्रित किया। कदाचित् उसका विचार रहा हो कि इब्राहीम लोदी को पराजित कर बाबर वापस लौट जाएगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ और बाद में राणा सांगा को भी बाबर से युद्ध लड़ने पड़े। मार्च, 1527 में खानवा के युद्ध में बाबर से हार जाने पर उसकी प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुंचा।

मेवाड़ में अव्यवस्था का काल

30 जनवरी 1528 को महाराणा सांगा के देहावसान के बाद मेवाड़ में अव्यवस्था का काल प्रारम्भ हो गया। अनेक गुणों से सम्पन्न होने पर भी राणा सांगा में राजनीतिक दूरदर्शिता का अभाव था। उसने अपनी रानी कर्मवती

ने पुत्रों विक्रमाजीत तथा उदयसिंह को रणथम्भोर की जागीर दे दी। मेवाड़ के इतिहास में ऐसा प्रथम बार हुआ था। इसके पीछे मुख्य भूमिका रानी कर्मवती की ही थी। राणा के इस निर्णय से मेवाड़ में एक अशान्त वातावरण बन गया। मेवाड़ के राजसिंहासन पर सांगा के बाद उसका पुत्र रत्नसिंह का अधिकार था। सत्ता पर अधिकार करते ही उसने रणथम्भोर की जागीर को वापस लेना चाहा। इससे राजपरिवार में ही फूट और दलबन्दी प्रारम्भ हो गई। रत्नसिंह एक अयोग्य, भीरु तथा लापरवाह शासक था। कर्मवती इस समय अपने भाई सूरजमल के संरक्षण में रहती थी। वह अपने पुत्र को मेवाड़ का शासक बनाना चाहती थी। रत्नसिंह द्वारा रणथम्भोर की जागीर वापस मांगे जाने पर वह टालमटोल करने लगी। उसने षड्यन्त्र आरम्भ कर दिया। उसने बाबर के पास सन्देश भिजवाया कि वह उसके पुत्र को मेवाड़ का राज्य दिलाने में सहायता करे। इसके बदले में उसे रणथम्भोर का किला तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं भेंट में दी जाएगी। बाबर इसके लिए सहमत हो गया था, किन्तु घटनाचक्र कुछ इस प्रकार का बना कि वह अन्य आवश्यक कार्यों में व्यस्त हो गया और कर्मवती को सहायता नहीं दे पाया। इस पर कर्मवती ने दूसरी चाल चली। उसके भाई सूरजमल ने 1531 में रत्नसिंह को शिकार खेलने के लिए बूंदी बुलाया और उसकी हत्या कर दी।

रत्नसिंह की हत्या से मेवाड़ में क्षोभ का वातावरण बन गया। जनता स्वयं को असुरक्षित जैसा अनुभव करने लगी। ऐसे समय में विक्रमाजीत मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। वह एक उद्दण्ड, स्वेच्छाचारी, क्रोधी तथा पूर्णतया अयोग्य शासक था। उसे राजनीति और युद्ध कला का कोई भी ज्ञान न था। वह सदा सुरा-सुन्दरी के सहवास में डूबा रहता था। वह राज्य को केवल ऐश्वर्य की वस्तु समझता था। फलतः राज्य में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई। विक्रमाजीत से असन्तुष्ट होकर कुछ राजपूत सामन्त गुजरात के शासक बहादुरशाह के पास पहुंचे। उन्होंने उसे मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। बहादुरशाह ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। विक्रमाजीत में इतनी योग्यता नहीं थी कि वह इस आक्रमण का सामना करता। रानी कर्मवती ने अपने पुत्रों को सुरक्षित स्थान पर भेज दिया तथा हुमायूं से सहायता

मांगी। हुमायूं सम्भवतः एक राजपूत के पक्ष में अपने सहधर्मी से युद्ध में नहीं उलझना चाहता था, अतः कर्मवती का प्रस्ताव स्वीकार कर लेने पर भी उसने कोई सहायता नही दी। कर्मवती को 13000 स्त्रियों तथा 3000 बच्चो सहित आग में जलकर अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। मार्च 1535 में मेवाड़ की राजधानी पर बहादुरशाह का अधिकार हो गया।

चित्तौड़ पर अधिकार करने के बाद बहादुरशाह ने वहां का शासन अपने प्रतिनिधि पुरहान उल मुल्क बखारी को सौंप दिया। उसकी अधिकांश सेना के चित्तौड़ से जाते ही राजपूतों ने चित्तौड़ पर पुन आक्रमण कर लिया। विक्रमाजीत को पुनः मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठाया गया। अधिकतर इतिहास की पुस्तकों में लिखा मिलता है कि विक्रमाजीत को पुन गद्दी पर बैठाने में हुमायूं ने सहायता दी थी, किन्तु डॉ० बनर्जी ने स्पष्ट किया है कि बहादुरशाह द्वारा चित्तौड़ पर घेरे के समय हुमायूं ग्वालियर में आराम कर रहा था। वह जून 1536 में अपने भाई अस्करी का पीछा करते हुए चित्तौड़ पहुंचा था। इससे पूर्व ही विक्रमाजीत का पुन सिंहासनारोहण हो चुका था। पुन गद्दी पर बैठने पर भी विक्रमाजीत मेवाड़ के असन्तोष तथा अव्यवस्था को दूर नहीं कर सका। अतः उसे गद्दी से उतार दिया गया।

बनवीर का शासन

सन् 1536 में विक्रमाजीत का छोटा भाई उदयसिंह एक बालक ही था। अतः मेवाड़ के सामन्तों के परामर्श पर बनवीर को राजसिंहासन पर बैठाया गया। वह राणा सांगा के भाई पृथ्वीराज का किसी निम्न कुल की दासी से उत्पन्न पुत्र था। गद्दी पर बैठते ही बनवीर में ईर्ष्याभाव जाग पड़ा। उसने विचार किया कि जब तक सिंहासन के वास्तविक उत्तराधिकारियों को समाप्त नहीं किया जाएगा, तब तक वह निष्कण्टक राज्य नहीं कर सकेगा। अतः उचित समय पाकर एक रात्रि उसने विक्रमाजीत की हत्या कर दी। इसके बाद वह उदयसिंह की भी हत्या करना चाहता था। उदयसिंह उस समय अपनी धाय मां पन्ना के संरक्षण में था। बनवीर हाथ में तलवार लेकर उदयसिंह की हत्या करने पहुंचा। पन्ना बनवीर का मनोरथ समझ चुकी थी, इसलिए उसने देश एवं जाति के प्रति अपने कर्तव्य को समझते हुए उदयसिंह को सुरक्षित बाहर

निकाल दिया और उसकी शैया पर अपने पुत्र को सुला दिया, जो उदयसिंह का ही समवयस्क था। बनवीर ने उदयसिंह समझकर पन्ना धाय के पुत्र का काम तमाम कर डाला और सन्तोष की सांस लेकर चल पड़ा। इसके बाद शीघ्र ही विक्रमाजीत और उदयसिंह की हत्या का समाचार सम्पूर्ण राज्य में फैल गया। बनवीर अब तक मेवाड़ का कार्यवाहक शासक था। उसने स्वयं को मेवाड़ का राजा घोषित कर दिया। वह एक अत्याचारी शासक सिद्ध हुआ। उसके अत्याचारों से जनता उसके विरुद्ध हो गई।

1536 में उदयसिंह को सुरक्षित बचाकर पन्ना कुम्भलगढ़ पहुंची। एक वर्ष तक उसने किसी को पता भी न लगने दिया कि उदयसिंह जीवित है। धीरे-धीरे बात खुल गई। मेवाड़ की जनता को इससे अपार प्रसन्नता हुई। एक-एक कर मेवाड़ के सभी सामन्त उदयसिंह को देखने के लिए कुम्भलगढ़ पहुंचे। कई सामन्त स्थाई रूप से वहीं रहने लगे। सबने उदयसिंह के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की तथा इस तथ्य को स्वीकार किया कि वही (उदयसिंह) मेवाड़ के राजसिंहासन का वास्तविक स्वामी है। वहीं रहते हुए उदयसिंह अपनी शक्ति बढ़ाने लगा, क्योंकि बनवीर से सत्ता को वापस लेना सरल कार्य नहीं था। जब उसे अपनी शक्ति पर विश्वास हो गया, तो वह सेना लेकर चित्तौड़ जीतने के लिए चल पड़ा। उदयसिंह के प्रयाण का समाचार सुनकर बनवीर ने कुंवरसी तंवर के नेतृत्व में सेना भेजी। माहोली गांव में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। भयंकर लड़ाई के बाद उदयसिंह की सेना विजयी हुई। कुंवरसिंह तंवर अपने अनेक सैनिकों के साथ मारा गया।

इस विजय से उत्साहित होकर उदयसिंह अपने दल-बल सहित चित्तौड़ के लिए चल पड़ा। इस पर बनवीर भी सेना लेकर स्वयं उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ा। पुनः दोनों सेनाओं का सामना हुआ। यहां भी उदयसिंह को विजयश्री प्राप्त हुई। बनवीर युद्ध भूमि से भाग खड़ा हुआ। इसके बाद वह सम्भवतः दक्षिण भारत की ओर चला गया। फिर उसका क्या हुआ, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार भाग्य ने उदयसिंह का साथ दिया और 1540 ई० में वह अपने पूर्वजों के राज्य मेवाड़ का स्वामी बन गया। उस समय मेवाड़ की स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी, अतः उदयसिंह को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

मेवाड़ की राजवंशावली

मेवाड़ के इस राजवंश का सम्बन्ध सूर्यवंश से स्थापित करते हुए भागवत् आदि धार्मिक साहित्य में भी इसकी वंशावली प्राप्त होती है। अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों में भी यह वंशावली प्राप्त होती है। इनके नामक्रमों में पर्याप्त विषमता भी दिखाई देती है। कुछ पुस्तकों में कुछ नाम आगे-पीछे हैं, तो कुछ अन्य पुस्तकों में कुछ नये नाम भी जोड़ दिए गए हैं। वीरविनोद के लेखक ने पर्याप्त प्रमाणों के आधार पर गुहिल (गुहादित्य) से फतहसिंह तक निम्न वंशावली दी है—

(1) गुहिल
(2) भोज
(3) महेन्द्र
(4) नाग
(5) शील
(6) अपराजित
(7) महेन्द्र
(8) बापा
(9) खुमाण
(10) भर्तृभट्ट
(11) सिंह
(12) अल्लट
(13) नरवाहन
(14) शालिवाहन
(15) शक्तिकुमार
(16) शुचिवर्मा
(17) नरवर्मा
(18) कीर्तिवर्मा
(19) वैरट
(20) वैरिसिंह
(21) विजयसिंह

(51) मोकल
(52) कुम्भकर्ण
(53) उदयकर्ण
(54) रायमल
(55) संग्रामसिंह
(56) रत्नसिंह
(57) विक्रमादित्य
(58) उदयसिंह
(59) प्रतापसिंह (महाराणा प्रताप)
(60) अमरसिंह
(61) कर्णसिंह
(62) जगतसिंह
(63) राजसिंह
(64) जयसिंह
(65) अमरसिंह
(66) संग्रामसिंह
(67) जगतसिंह
(68) प्रतापसिंह
(69) राजसिंह
(70) अरिसिंह
(71) हमीरसिंह
(72) भीमसिंह
(73) जवानसिंह
(74) सरदारसिंह
(75) स्वरूपसिंह
(76) शम्भुसिंह
(77) सज्जनसिंह
(78) फतहसिंह

प्रारम्भिक जीवन

जिस समय उदयसिंह मेवाड़ का शासक बना, लगभग उसी समय दिल्ली पर शेरशाह सूरी ने अधिकार कर लिया था। मुगल सम्राट् हुमायूं को पदच्युत कर उसने भारत से खदेड़ दिया था। उदयसिंह के राज्यारोहण के चौथे वर्ष 1544 ई० में शेरशाह ने राजपूताने पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। इसी वर्ष उसने मालदेव को पराजित कर जोधपुर पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् वह चित्तौड़ पर अधिकार करने के लिए चल पड़ा। उसने अपना शिविर जहाजपुर में डाला। मेवाड़ की दयनीय स्थिति को देखते हुए उदयसिंह ने युक्ति से काम लेना उचित समझा और चित्तौड़ दुर्ग की चाबियां शेरशाह के पास भेज दीं। शेरशाह ने उदयसिंह के इस आत्मसमर्पण को स्वीकार कर लिया। सम्भवतः उसने मेवाड़ में अपने एक औपचारिक प्रतिनिधि शम्सखां की नियुक्ति कर दी, किन्तु वास्तविक सत्ता उदयसिंह के पास ही रही। कदाचित् यह नियुक्ति मेवाड़ से निश्चित कर ग्रहण करने तथा मेवाड़ कोई विद्रोह न करे, केवल इसीलिए की गई थी। वस्तुतः शेरशाह विजित प्रदेश के शासक को पदच्युत कर वहां जन असन्तोष उत्पन्न करने के पक्ष में नहीं था।

मेवाड़ पर शेरशाह का अधिकार अधिक समय तक नहीं रह सका। एक वर्ष में ही शेरशाह की मृत्यु हो जाने पर राजपूताने के सभी राज्यों ने अफगानों को अपने यहां से भगाकर स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। अतः 1645 ई० में ही चित्तौड़ पुनः स्वतन्त्र हो गया।

प्रताप का जन्म

प्रताप महाराणा उदयसिंह के सबसे बड़े पुत्र थे। उनका जन्म रानी जैवन्ताबाई के गर्भ से हुआ था। उनकी जन्मतिथि के विषय में इतिहासकारों में

भी दिये हैं, किन्तु अन्य पत्नियों का नामोल्लेख नहीं हुआ है। ग्यारह अन्य पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं -

(1) नारायणदास (2) सुल्तान,
(3) लूणकरण, (4) महेशदास,
(5) चन्दा, (6) भावसिंह,
(7) नेतसिंह, (8) नागराज,
(9) बैरीशाल, (10) मानसिंह तथा
(11) साहिब खां।

साहिब खां कदाचित् किसी मुसलमान पत्नी या उप-पत्नी से उत्पन्न हुआ होगा। यदि वह हिन्दू से मुसलमान बनता, तो उसके हिन्दू नाम का उल्लेख भी अवश्य होता। यह ध्यान देने पर एक अन्य तथ्य स्पष्ट होता है कि उदयसिंह की किसी भी पुत्री के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। कदाचित् पुरुष प्रधान समाज की पुत्री के प्रति उपेक्षा के कारण ही ऐसा हुआ हो, क्योंकि कोई भी पुत्री न हुई हो, यह बात सत्य नहीं जान पड़ती और इसके साथ ही आगे महाराणा प्रताप की भी किसी पुत्री का नाम इतिहास की पुस्तकों में नहीं दिया गया है।

नैनसी के अनुसार उदयसिंह की बीस रानियां तथा 17 पुत्र थे और प्रताप सबसे बड़ी रानी के पुत्र होने के साथ ही सभी पुत्रों में ज्येष्ठ थे, इतना निर्विवाद है। फिर चाहे उदयसिंह की अठारह रानियां हों या बीस और पुत्रों की संख्या 17 हो या चौबीस।

प्रताप का बाल्यकाल

महाराणा प्रताप के बाल्यकाल अथवा उनके प्रारम्भिक जीवन पर इतिहास की पुस्तकों से कोई प्रकाश नहीं पड़ता। अत: उनके इस जीवन को उदयसिंह के शासनकाल तथा संघर्षों के परिप्रेक्ष्य में ही देखना उचित होगा। प्रताप अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र थे और उदयसिंह का शासन कोई सुख-शान्ति से युक्त नहीं रहा। अत: मेवाड़ के इस ज्येष्ठ राजकुमार का बाल्यकाल भी फूलों की सेज नहीं कहा जा सकता। उदयसिंह को अपने जीवन में संघर्ष करते हुए

निरन्तर इधर-उधर भागना पड़ा। निश्चय ही इससे प्रभावित [illegible] भी पस्त होगा।

नई राजधानी उदयपुर का निर्माण

यद्यपि थोड़े समय के लिए ही सही फिर भी [illegible] का अधिकार रहा। तब तक मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ थी। [illegible] उदयसिंह ने विचार किया कि चित्तौड़ राजधानी के लिए अब सुरक्षित स्थान नहीं है। इस प्रेरणा से उन्होंने नवीन राजधानी बनाने के विषय में सोचा। इसके लिए पर्वतों से घिरा हुआ एक स्थान सुरक्षित समझा गया। इसके लिए गिर्वा प्रदेश में एक स्थान का चयन हुआ। विक्रमी संवत् 1616 में इस स्थान पर नवीन राजधानी उदयपुर का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। इसके आस पास बसने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया गया और उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएं दी गई। निश्चय ही उदयसिंह का यह कार्य दूरदर्शितापूर्ण था। इससे उसने मेवाड़ पर होने वाले आक्रमणों से राज्य एवं प्रजा दोनों की सुरक्षा हुई।

राज्य विस्तार और मैत्री सम्बन्ध

शेरशाह से मुक्त होते ही उदयसिंह राजपूताने में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में जुट गए। इसके लिए मेवाड़ के समीपवर्ती राज्यों को अपने प्रभाव में लाना था। इस समय राजस्थान में बूंदी सर्वाधिक पुराना राज्य था, जिसमें चौहान राजवंश का शासन था। राव सुर्जन के समय तक पूर्वी बूंदी के राव किसी-न-किसी रूप में मेवाड़ के आधीन रहते थे, किन्तु मेवाड़ की वर्तमान अस्त-व्यस्त स्थिति को देखकर बूंदी ने मेवाड़ की आधीनता त्याग दी थी। इस समय वहां का शासक राव सुरत्राण था। उसके अत्याचारों से सामन्त खिन्न रहते थे। इन सरदारों ने उदयसिंह से सहायता की याचना की। उदयसिंह इसी अवसर की प्रतीक्षा में था। उसे बूंदी पर हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया। बूंदी राजवंश का एक वीर सैनिक हाड़ा सुर्जन उदयसिंह की सेवा में था। उसने कई युद्धों में वीरतापूर्वक भाग लिया था। बूंदी में सुरत्राण के अत्याचारों को देखते हुए उदयसिंह [illegible] को वहां का राजा बनाने का निश्चय कर उसका राजतिलक

कर दिया तथा उसे रणथम्भोर का दुर्गरक्षक बना दिया। सन् 1554 में सुर्जन को सेना के साथ बूंदी पर अधिकार करने के लिए भेजा। सफलता मिलना अवश्यम्भावी था। सुरताण युद्ध में पराजित होकर भाग खड़ा हुआ और बूंदी उदयसिंह के आधीन हो गया।

मेवाड के उत्तर में डूंगरपुर राज्य था। मेवाड की सुरक्षा हेतु इसे आधीन करना आवश्यक था। सन् 1557 से पूर्व ही उदयसिंह ने इस पर आक्रमण करने के लिए सेना भेज दी। सम्भवत इस युद्ध में मेवाड को सफलता नहीं मिली और हानि उठानी पड़ी।

पड़ोसी राज्यों पर प्रभाव जमाने के इसी क्रम में उदयसिंह का ध्यान मारवाड़ पर गया। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ राजपूताने का सबसे शक्तिशाली राज्य हो गया था। वहां का शासक मालदेव भी एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह स्वयं भी अपने प्रभावक्षेत्र का विस्तार करने में संलग्न था। अतः दोनों का टकराव स्वाभाविक था। दोनों ही एक दूसरे को अपने प्रभाव में लाने की प्रतीक्षा में थे। तभी उदयसिंह को यह अवसर मिल गया। उस समय अलवर पर शेरशाह सूरी के एक सेनापति हाजी खां का अधिकार था। शेरशाह की मृत्यु के बाद दिल्ली पर पुनः मुगलों का अधिकार हो चुका था। अकबर मुगल सम्राट हो गया था। उसने हाजी खां को पराजित करने के लिए एक सेना भेजी। सेना के अलवर पहुंचने से पूर्व ही हाजी खां अजमेर भाग गया मालदेव ने उसे लूटने के लिए अपनी सेना भेज दी। हाजी खां उदयसिंह तथा मालदेव की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता से परिचित था। उसने उदयसिंह से सहायता मांगी। उदयसिंह ने उसकी सहायता के लिए राव जयमल मेड़तिया, राव सुर्जन तथा दुर्गा सिसौदिया को भेजा। मालदेव की सेना बिना युद्ध किए ही वापस लौट गई। इस घटना से मालदेव और उदयसिंह की शत्रुता और भी बढ़ गई।

हाजी खां की एक प्रेमिका रंगराय पातर थी, जिसके सौन्दर्य की प्रशंसा सुन उदयसिंह ने उसे प्राप्त करना चाहा। उसने हाजी खां की सहायता की थी। अतः उससे उक्त पातर की मांग की। हाजी खां ने उसे अपनी पत्नी बताते हुए देना अस्वीकार कर दिया। सामन्तों ने उदयसिंह के इस कार्य का विरोध किया, फिर भी उदयसिंह ने हाजी खां के विरुद्ध सेना भेज दी। हाजी खां ने इस अवसर पर मालदेव से सहायता मांगी। मालदेव भी अवसर की ताक में था।

उसने सहायता देना स्वीकार कर लिया। जनवरी 1557 में हरमाड़ा में दोनों पक्षों की सेनाएं एकत्र हो गईं। मालदेव के पन्द्रह सौ सैनिक तथा हाजी खां के पांच हजार पठान थे, जबकि मेवाड़ सैनिक इससे बहुत कम थे। सामन्तों ने उदयसिंह को पुनः सलाह दी कि युद्ध न किया जाए, किन्तु उदयसिंह ने किसी की न सुनी। युद्ध का परिणाम वही रहा, जिसकी सम्भावना थी। उदयसिंह की सेना बुरी तरह हार गई तथा अनेक सैनिक मारे गए।

यह युद्ध मालदेव तथा उदयसिंह का अन्तिम युद्ध नहीं था। दोनों ही राजपूताना में अपनी-अपनी प्रभुता स्थापित करना चाहते थे। खैरवे के राव जैतसिंह की पुत्री मालदेव की पत्नी थी। मालदेव जैतसिंह की दूसरी पुत्री से भी विवाह करना चाहता था, किन्तु जैतसिंह ने इसे अस्वीकार कर दिया और मालदेव ने इसका परिणाम भुगतने की धमकी दी। जैतसिंह ने विचार किया कि मालदेव के आक्रमण के विरुद्ध उदयसिंह ही उसकी सहायता कर सकता है। अतः उसने उदयसिंह के पास सहायता के लिए पत्र भेजा तथा अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव भी भेज दिया। उदयसिंह ने दोनों बातें स्वीकार कर लीं। जैतसिंह अपनी पुत्री को लेकर कुम्भलगढ़ के पास गुढ़ा नामक गांव पहुंचा, जहां उसकी पुत्री के साथ उदयसिंह का विवाह हो गया। इस घटना से मालदेव के साथ उसके सम्बन्ध और भी कटु हो गए और क्रुद्ध होकर मालदेव ने कुम्भलगढ़ पर आक्रमण कर दिया। मेवाड़ की सेना ने इस आक्रमण का वीरतापूर्वक सामना किया। मालदेव की सेना पराजित होकर भाग खड़ी हुई।

सिरोही मेवाड़ का एक अन्य समीपस्थ राज्य था। इसे अपने प्रभाव में लाने पर मेवाड़ के प्रभाव में वृद्धि होना स्वाभाविक था। घटनाक्रम कुछ इस प्रकार बना कि सिरोही अनायास ही मेवाड़ के प्रभाव में आ गया। वहां के शासक का नाम भी उदयसिंह था। उसने अपने चचेरे भाई मानसिंह से लोहियाणा की जागीर छीन ली। मानसिंह मेवाड़ के उदयसिंह की सेवा में चला गया। राणा उदयसिंह ने उसे अठारह गांवों की जागीर दे दी। सन् 1562 में सिरोही के शासक उदयसिंह की मृत्यु हो गई और मानसिंह वहां का शासक बन गया। बुरे समय में आश्रय और सम्मान मिलने से वह मेवाड़ का शुभचिन्तक बन गया।

इन प्रकार विवरणों से सिद्ध हो जाता है कि उदयसिंह ने मेवाड़ को सशक्त बनाने के जो प्रयास किए, वह उसकी दूरदर्शिता के सुन्दर प्रमाण हैं।

उदयसिंह का मुगलों से संघर्ष

मेवाड़ पर उदयसिंह ने बड़ा का लगी परेशानी में शासन रहा था। उस समय यह कुम्भा के साथ अपने राज्य का प्रसार बढ़ा रहा था। सन् 15 में दिल्ली के सिंहासन पर अकबर का अभिषेक हुआ। इस घटना से भारत राजनीति में एक नया परिवर्तन आया। अकबर भारत का एकछत्र स बनना चाहता था। उसकी यह महत्त्वाकांक्षा उदयसिंह के लिए भावी प कठिनाइयों का कारण बनी। अकबर ने सभी राजपूत राजाओं को अपने अधी करने की योजना बनाई। वह राजपूतों की वीरता तथा अन्य गुणों से परिचि था। अतः भारत सम्राट बनने के लिए राजपूतों को अपने पक्ष में करना उ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझा। जनवरी 1562 ई० में उसने आमेर के कछवा नरेश भारमल की पुत्री से विवाह कर इस राज्य को अपना मित्र बना लिया उसके बाद ही इसी वर्ष उसने राजपूताना के मेड़ता राज्य को भी अपने अधी कर लिया। समस्त राजपूत राजाओं को अपने अधीन करने के लिए यह मेवाड़ पर विजय करना आवश्यक था। उदयसिंह मुगलों की अधीनता स्वीका करने के लिए किसी प्रकार सहमत न हुए।

उदयसिंह का एक पुत्र शक्तिसिंह पिता से विवाद हो जाने पर अकबर के शरण में चला गया था। एक बार अकबर ने अपने दरबार में यों ही उनसे कह दिया कि अन्य राजाओं ने शाही दरबार में डोले भेजे हैं, किन्तु उदयसिं ने ऐसा नहीं किया। शक्तिसिंह समझ गया कि अकबर कभी भी मेवाड़ पर आक्रमण कर सकता है। सितम्बर 1567 में शक्तिसिंह बिना अकबर को बताये धोलापुर से अपने पिता के पास आया और उसने अकबर की योजना के विषय में बता दिया।

मेवाड़ और मुगलों में परम्परागत शत्रुता थी। बाबर और राणा सांगा में चालीस वर्ष पूर्व इसका सूत्रपात हो चुका था। अकबर बाबर से कहीं अधिक महत्त्वाकांक्षी था। शक्तिसिंह द्वारा अकबर के आक्रमण की पूर्व सूचना मिलने पर उदयसिंह ने अपने राज्य के सम्भ्रान्त नागरिकों तथा अनुभवी सामन्तों की एक सभा बुलाई, जिसमें भावी विपत्ति का सामना करने के विषय में विचार हुआ। इस सभा ने निर्णय दिया कि उदयसिंह परिवार सहित पश्चिमी-

हाडियों में चला जाए और वहीं रहकर नई बस्ती की सुरक्षा का प्रबन्ध करे। चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा का भार जयमल राठौड़ तथा पत्ता को सौंप दिया गया और वहां आठ हजार राजपूत सैनिक नियुक्त कर दिये गये। दुर्ग में पर्याप्त खाद्य तथा युद्ध सामग्री का प्रबन्ध कर दिया गया तथा इसके आस-पास की सभी बस्तियों को भी नष्ट कर दिया गया। कालपी से लाये गये एक हजार बन्दूकधारी सैनिकों को आक्रमणकारियों को रोकने के लिए मार्गों पर मोर्चे के रूप में नियुक्त कर दिया गया।

यद्यपि अनेक इतिहासकारों ने उदयसिंह के इस कार्य की आलोचना करते हुए उसे कायर सिद्ध किया है, किन्तु परिस्थिति को देखते हुए इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। वैसे भी यह निर्णय अनुभवी परामर्शदाताओं ने सर्वसम्मति से लिया था। अतः इसे अस्वीकार करना भी उचित न होता।

अकबर द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण

सितम्बर 1567 में अकबर चित्तौड़ पर विजय प्राप्त करने के लिए चल पड़ा। मार्ग में शिवपुर तथा कोटा के किलों को जीतता हुआ वह गागरौन पहुंचा। उसके दो सेनापतियों आसफ खां और वजीर खां ने मेवाड़ के एक सुदृढ़ दुर्ग माण्डलगढ़ पर अधिकार कर लिया। अपनी एक सेना को मालवा विजय करने के लिए भेजकर अकबर भारी दल-बल के साथ चित्तौड़ की ओर बढ़ चला। 23 अक्टूबर 1567 को उसने चित्तौड़गढ़ का घेरा डाल लिया। यह घेरा कई दिनों तक चलता रहा। राजपूतों ने मुगल सेना का वीरता से सामना किया। अकबर की सेना का उत्साह क्षीण होने लगा। इस पर उसने अपनी सेना को सुरंग बनाने तथा साबात बनाने का आदेश दिया। राजपूत सेना सुरंग बनाने वालों तथा अन्य मुगल सेना का विनाश करने लगी। साबात बनाने वाले कारीगरों के बचाव के लिए मोटे-मोटे चमड़े के छावन बनाये गये। फिर भी मुगलों के अनेक कारीगर मारे गये। सुरंगों से मुगलों ने किले की दीवारें कई स्थानों से तोड़ डालीं, फिर भी राजपूत सैनिकों ने उन स्थानों पर तेल, रुई, बारूद आदि जलाकर शत्रुओं को अन्दर आने से रोका। लम्बे संघर्ष से दुर्ग में भोजन सामग्री का अभाव हो गया। इस युद्ध में अकबर की गोली से जयमल वीरगति को प्राप्त हुआ।

जयमल की मृत्यु से राजपूतों को बड़ी निराशा हुई। अन्त: जौहर व्रत किया [illegible] इस पर दुर्ग में राजपूतों ने [illegible] को अपना [illegible] [illegible] अपने-अपने वस्त्रों का [illegible] किया। [illegible] हजारों राजपूत स्त्रियां आग में कूद गईं। 24 या 25 फरवरी 1568 को प्रातः राजपूत अन्तिम संघर्ष के लिए [illegible]। मृत्यु के [illegible] राजपूतों ने किले का द्वार खोल दिया और शत्रुओं पर टूट पड़े। लगातार संघर्ष के बाद मुगल सेना ने चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

दुर्ग पर अधिकार हो जाने के बाद भी अकबर की [illegible] को [illegible] नहीं हुआ। चित्तौड़ के आस-पास नागरिक भी दुर्ग में शरण लिए हुए थे, जिनकी संख्या लगभग चालीस हजार थी। दुर्ग में प्रवेश के बाद अकबर ने अन्दर रहे हुए इन सभी निरपराध लोगों का कत्लेआम करा दिया, जो दिन के तीसरे प्रहर तक चलता रहा। इस अमानवीय कार्य का मेवाड़ के इतिहास में कोई अन्य उदाहरण नहीं मिलता। निःसन्देह अकबर महान का यह कृत्य उसकी महानता पर एक काला धब्बा ही कहा जाएगा।

इस युद्ध में अकबर जयमल और पत्ता की अद्भुत वीरता से प्रभावित हुए बिना न रह सका। उसने इन वीरों के शौर्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की, कहा जाता है कि वह इन दोनों की वीरता से प्रभावित हुआ कि उसने आगरा के किले में इन दोनों की मूर्तियां लगवायी।

चित्तौड़ को अधिकार में करने के दूसरे वर्ष अकबर ने मेवाड़ के दूसरे दुर्ग रणथम्भोर पर भी अधिकार कर लिया। इस दुर्ग के रक्षक राव सुरजनसिंह हाड़ा ने उदयसिंह का पक्ष त्याग कर अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और 1570 ई० के अन्त तक राजपूताना के सभी नरेशों ने एक एक कर अकबर की सत्ता के समक्ष सिर झुका दिये तथा उसकी सेवाएं स्वीकार कर लीं। केवल उदयसिंह ही ऐसा शासक था, जिसने अकबर के समक्ष झुकना स्वीकार नहीं किया। यद्यपि मेवाड़ के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दुर्ग चित्तौड़ पर अकबर का अधिकार हो गया था और लगभग एक तिहाई मेवाड़ भी हाथ से निकल गया था, तथापि उदयसिंह जीवन पर्यन्त उदयपुर को नई राजधानी बनाकर वहीं से अकबर से संघर्ष करता रहा।

उदयसिंह द्वारा जगमाल को युवराज पद

प्रताप अपने पिता उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी बनता था, किन्तु उदयसिंह ने इस परम्परा की पूर्णतया अवहेलना कर दी। 1570 में वह कुम्भलमेर गये। वहां उन्होंने सैनिकों की भर्ती की। इन सैनिकों को लेकर वह गोगूंदा पहुंचे। अगले वर्ष वह गोगूंदे में ही रहे। दशहरा मनाने के बाद उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। तब उन्होंने धीरजबाई भटियाणी से उत्पन्न अपने पुत्र जगमाल को युवराज घोषित कर दिया। रानी भटियाणी पर वह विशेष अनुग्रह रखता था। अतः उसी के कहने पर ऐसा किया होगा। इस विषय में वीर विनोद में लिखा है—

"विक्रमी 1627 (हिजरी 978 ईसवी 1570) में महाराणा कुम्भलमेर पधारे और वहां से फौज इकट्ठी करके गोगूंदे आये और वि० 1628 का दशहरा वहीं किया यह महाराणा जब फाल्गुन के महीने में बीमार हुए, तो उन्होंने अपने पुत्र जगमाल को, जो महाराणी भटियाणी से जन्मा था, युवराज बनाया, क्योंकि महाराणी भटियाणी पर उन महाराज की जियादह मेहरबानी थी।"

परम्परा का उल्लंघन करके छोटे पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित करना निश्चय ही कोई बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं था। ऐसा करने से पूर्व उदयसिंह ने कुछ सामन्तों को अपने पक्ष में कर लिया था। तभी उन्होंने ऐसी घोषणा की। इस निर्णय से प्रताप की आकांक्षाओं पर तुषारपात होना स्वाभाविक था, क्योंकि वस्तुतः वही राज्य के उत्तराधिकारी थे, किन्तु अपने पिता के निर्णय के विरुद्ध उन्होंने उनके जीवनकाल में कुछ किया, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

उदयसिंह की मृत्यु

इस अस्वस्थता से सम्भवतः महाराणा उदयसिंह को अपने अन्तिम समय का पूर्वानुमान हो गया था। इसीलिए उसने जगमाल को युवराज बना दिया। थोड़े ही दिनों की अस्वस्थता के बाद 28 फरवरी 1572 को उदयसिंह की मृत्यु हो गयी।

तृतीय अध्याय

महाराणा प्रताप का राज्याभिषेक

उदयसिंह अपनी सर्वप्रिय रानी भटियाणी के पुत्र जगमाल को युवराज घोषित कर गये थे। गोगूंदा मे उदयसिंह की मृत्यु के बाद जब उनके अन्तिम संस्कार के लिए पार्थिव शरीर श्मशान ले जाया गया, तो वहा जगमाल नहीं गया। मेवाड़ की परम्परा के अनुसार राज्य का उत्तराधिकारी पूर्व राजा के दाह संस्कार मे सम्मिलित नही होता था। उदयसिंह द्वारा जगमाल को युवराज घोषित किये जाने की सूचना से अधिकाश सामन्त अनभिज्ञ थे श्मशान मे जगमाल की अनुपस्थिति से सामन्तो को आश्चर्य हुआ। इस पर ग्वालियर के राजा रामसिंह ने जगमाल के छोटे भाई राजकुमार सगर से पूछा— "जगमाल कहा है ?"

"क्या आप नहीं जानते कि स्वर्गीय महाराणा ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया है।" सगर ने उत्तर दिया।

मेवाड़ के पक्ष मे राव चूड़ा ने अपना राज्य मेवाड़ मे मिला दिया था तब से राज्य का स्वामी सिसोदिया राजवंश का ज्येष्ठ पुत्र तथा राज्य का प्रमुख प्रबन्ध करने वाला चूडा का वंशज माना जाता था। अतः पाट के (राज्य के) स्वामी महाराणा तथा ठाठ (व्यवस्था) के प्रमुख चूडा माने जाते थे। सगर से जगमाल को युवराज बनाये जाने का समाचार सुनकर प्रताप के मामा जालौर के राव अखैसिंह ने चूडा के पोतों रावत कृष्णदास और रावत सागा से कहा—"आप चूडा के वशज हैं, अतः राज्य के उत्तराधिकारी का चुनाव आपकी सम्मति से ही होना चाहिए। मेवाड़ की स्थिति चिन्तनीय है। अकबर जैसा प्रबल शत्रु सिर पर है। मेवाड़ उजड़ रहा है। ऐसी स्थिति मे यदि यह घर का कलह भी बढ़ गया, तो राज्य की बर्बादी मे क्या सन्देह !"

मेवाड की ऐसी विषम परिस्थिति में किसी योग्य व्यक्ति को ही महाराणा बनाना उचित था। प्रताप सभी प्रकार से इसके लिए योग्य थे। प्रचलित नियम के अनुसार भी वही उसके अधिकारी थे। वहां उपस्थित सभी सामन्त भी इसी पक्ष में थे। अतः रावत कृष्णदास और रावत सांगा ने अपना निर्णय सुना दिया—

"पाटवी हकदार और बहादुर प्रतापसिंह किस कसूर से खारिज समझा जाए?"

प्रताप में एक नई आशा का संचार हुआ। अन्यथा वह मेवाड छोड देने के विषय में विचार करने लगे थे। उनके मेवाड छोडने का अर्थ होता—अपने अधिकार के लिए जगमाल से संघर्ष का प्रारम्भ। सामन्तों के निर्णय से यह संघर्ष टल गया।

जगमाल की जगह प्रताप-महाराणा

उधर जगमाल अपना राजतिलक करा रहा था। उदयसिंह की अन्त्येष्टि के बाद जब सभी सामन्त राजमहल में आये, तो जगमाल राजसिंहासन पर बैठा हुआ था। प्रताप राजमहल के बाहर ही रुक गये तथा भावी की प्रतीक्षा करने लगे। सामन्तों ने जगमाल को "तुम्हारा स्थान सिंहासन नहीं, अपितु इसके सामने है" कहते हुए हाथ पकड़कर सिंहासन के सामने बैठा दिया, क्योंकि मेवाड़ में महाराणा के भाई सिंहासन के सामने बैठते हैं। जगमाल को अपमान का घूंट पीकर रह जाना पड़ा, क्योंकि एक तो उसका पक्ष परम्परा से ही दुर्बल था; साथ ही उसके समर्थकों की संख्या भी नगण्य थी। वह बिना कोई विरोध किए निश्चित स्थान पर बैठ गया।

इसके बाद प्रताप को दरबार में बुलाकर सिंहासन पर बैठाया गया। विधिवत् उनका राजतिलक हुआ और 'प्रतापराव की जय' के नारों से आसमान गूंजने लगा। इसके बाद प्रताप मेवाड के महाराणा बन गए। उन्होंने मेवाड राज्य की प्रथा के अनुसार अपने सभासदों को भेंटें तथा उपहार दिए। इस प्रकार कहां जगमाल राजपद के सपने देख रहा था और प्रताप मेवाड़ छोड़ने का विचार कर रहे थे, किन्तु हुआ इसके सर्वथा विपरीत। प्रताप महाराणा बन गए और

जगमाल देखता रह गया। यह समस्त घटना चक्र 28 फरवरी 1572 का है क्योंकि मेवाड़ में शासक की मृत्यु के दिन ही नये उत्तराधिकारी का चुनाव कर दिया जाता था।

जगमाल मुगलों की शरण में

जगमाल अपने अपमान को नहीं भूला था। यद्यपि उसने मेवाड़ में इसका प्रत्यक्ष विरोध नहीं किया, परन्तु अन्दर ही अन्दर उसके लिए मेवाड़ में रहना कठिन हो गया। अतः वह मेवाड़ छोड़कर मुगल सूबेदार की सेवा में अजमेर चला गया। इससे मुगल सूबेदार अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने जगमाल को सहर्ष आश्रय दिया। उचित समय पर जगमाल अकबर के पास पहुंचा। अकबर ने उसे जहाजपुर की जागीर प्रदान कर दी। इसके बाद 1583 ई० में अकबर की आज्ञा से उसे सिरोही राज्य का आधा भाग भी दे दिया गया। विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अकबर एक तीर से दो निशाने मार रहा था। एक ओर वह मेवाड़ की घर की फूट को हवा दे रहा था और दूसरी ओर उसने जगमाल को सिरोही का आधा राज्य देकर उसके साले को भी उसका शत्रु बना दिया। सिरोही में अब तक जगमाल के ससुर राव मानसिंह का शासन था। सिरोही का राज्य भी जगमाल के लिए शुभ नहीं रहा। उसका साला राव सुरताण उसका विरोधी बन गया। दोनों के पारस्परिक वैर ने उग्र रूप धारण कर लिया तथा युद्ध छिड़ गया। सन् 1583 में दत्तानी के युद्ध में जगमाल अपने साले के हाथों मारा गया।

महाराणा प्रताप की प्रारम्भिक कठिनाइयां

जिस समय महाराणा प्रताप मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे, उस समय राज्य की स्थिति नितान्त अव्यवस्थित हो चुकी थी। लम्बे संघर्ष के परिणामस्वरूप मेवाड़ राजधानीहीन और साधन रहित हो गया था, सड़कें छिन्न-भिन्न हो गई थीं, सामाजिक जीवन भी अस्त-व्यस्त हो गया था, व्यापार अवरुद्ध हो गया था और सभी प्रकार के विकास कार्य रुक जाने से सम्पूर्ण राज्य की आर्थिक स्थिति

डांवाडोल हो गई थी। मेवाड़ का सभी उपजाऊ क्षेत्र मुगलों के अधिकार में चला गया था। वहां तीव्रगति से मुगलों द्वारा प्रगति हो रही थी। मेवाड़ के पूर्वी सीमान्त भागों—बेदनौर, मालपुरा और रायला भी मुगलों के अधिकार में थे। इन क्षेत्रों में मुगल सत्ता का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इन क्षेत्रों में अजमेर की दरगाह के लिए मुगल सम्राट् द्वारा अनुदान दिया जा रहा था। प्रताप के लिए यह सभी चिन्ता के विषय थे।

संक्षेप में प्रताप को उत्तराधिकार में छिन्न भिन्न मेवाड़ का राज्य और प्रबलतम मुगल सम्राट् अकबर की शत्रुता ही प्राप्त हुई थी। अब उनके सामने भावी नीति के निर्धारण की समस्या प्रमुख थी।

राजधानी परिवर्तन तथा नये कार्यक्रम

पहले ही उल्लेख हो चुका है कि चित्तौड़ मुगलों के अधिकार में हो गया था और प्रताप का अभिषेक गोगूदे में हुआ था। अभिषेक के बाद महाराणा प्रताप कुम्भलगढ़ की पहाड़ियों में चले गये। उन्होंने यहीं कुम्भलगढ़ दुर्ग को अपनी नवीन अस्थाई राजधानी बनाया। यहीं उनका विधिवत्पूर्ण राजतिलक हुआ। कुम्भलगढ़ में इस समारोह के अवसर पर जोधपुर के राव चन्द्रसेन भी सम्मिलित हुए, जो प्रताप के मामा थे। दोनों में स्वभावतः परम स्नेह था। इसके बाद यह स्नेह बन्धन और भी सुदृढ़ हो गया। अकबर को अपने गुप्तचरों से इस मिलन का समाचार प्राप्त हो गया। उसने इसे इसके साथ ही इस समय मेवाड़ में ग्वालियर तथा सिरोही के पदच्युत शासकों को भी आश्रय मिला हुआ था। सारांश में बूंदी, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, रणथम्भौर के चौहानों, ईडर और सिरोही के देवड़ा आदि से प्रताप के मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। यदि किसी एक से सन्धि भंग भी हो जाती, तो वह दूसरे से नवीन सन्धि कर लेते थे। वह इस तथ्य से अच्छी तरह अवगत हो चुके थे कि मुगल सम्राट् से कभी भी युद्ध हो सकता है। अतः उन्होंने समीपवर्ती राज्यों के शासकों से मित्रता की नीति अपनाई, ताकि भविष्य में मुगल आक्रमण का संगठित होकर सामना किया जा सके तथा मेवाड़ पर केन्द्रित आक्रमण न हो सके। इसके साथ ही वह अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाने में भी संलग्न रहे।

[illegible] समाचार अकबर तक पहुंचते रहे। इनसे उसका आशंकित होना
स्वाभाविक था। यद्यपि मेवाड़ के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार हो चुका था, किन्तु
मेवाड़ ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी, जबकि वह मेवाड़ को अधीन
करने के लिए कटिबद्ध था। महाराणा प्रताप की इन समस्त गतिविधियों को
[illegible] के साथ पठानों से साथ प्रताप के इस सम्बन्ध को उसने अपने
लिए भारी खतरे के रूप में देखा। यह इनके सिसौदिया तथा राठौरों का पुनः
[illegible] था। इसे रोकना आवश्यक था। अतः उसने जोधपुर तथा ईडर
की मुगल छावनियों को और अधिक सुदृढ़ कर चाक-चौबंद कर दिया। इससे
[illegible] की स्थिति और अधिक गड़बड़ हो गई।

[illegible] प्रताप हतोत्साहित नहीं हुए। दीर्घकालीन मुगल संघर्ष में मेवाड़ की
जनता में एक निराशा और उदासीनता की भावना व्याप्त हो गई थी। प्रताप
के लिए इस नकारात्मक भावना को दूर करना सबसे पहला कार्य था। अतः
चावण्ड को राजधानी बनाने के बाद उन्होंने सबसे पहले मेवाड़ में नवीन
चेतना का संचार करना प्रारम्भ कर दिया। इससे मेवाड़ की जनता का देश
प्रेम और स्वाभिमान जाग पड़ा। सभी अपनी मान-मर्यादा की रक्षा
को तत्पर हो उठे। मेवाड़ ने वनवासी भीलों को भी राज्य की स्वतन्त्रता की
रक्षा करने के लिए प्रेरित किया गया। सभी लोग मेवाड़ की स्वतन्त्रता तथा
[illegible] रक्षा का संकल्प लेकर किसी भी भीषण स्थिति का सामना करने के
[illegible] कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े हो गए। मेवाड़ में एक नये युग
[illegible] हुई।

से समस्त समाचार अकबर तक पहुँचते रहे। इनसे उसका आतंकित होना स्वाभाविक था। यद्यपि मेवाड़ के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार हो चुका था, किन्तु मेवाड़ ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी, जबकि वह मेवाड़ को अधीन करने के लिए कटिबद्ध था। महाराणा प्रताप की इन समस्त गतिविधियों को विशेष रूप से राव चन्द्रसेन के साथ प्रताप के इस सम्बन्ध को उसने अपने लिए भारी संकट के रूप में देखा। वह इसे सिसोदिया तथा राठौरो का पूर्व मिलन समझता था। इसे रोकना आवश्यक था। अतः उसने जोधपुर तथा ईडर की मुगल छावनियों को और अधिक सुदृढ़ कर अलग-अलग कर दिया। इससे महाराणा प्रताप की स्थिति और अधिक संकटमय हो गई।

इससे प्रताप हतोत्साहित नहीं हुए। दीर्घकालीन मुगल संघर्ष से मेवाड़ की जनता में एक निराशा और उदासीनता की भावना व्याप्त हो गई थी। प्रताप के लिए इस नकारात्मक भावना को दूर करना सबसे पहला कार्य था। अतः कुम्भलगढ़ को राजधानी बनाने के बाद उन्होंने सबसे पहले मेवाड़ में नवीन चेतना का संचार करना प्रारम्भ कर दिया। इससे मेवाड की जनता का देश तथा जाति के प्रति स्वाभिमान जाग पड़ा। सभी अपनी मान-मर्यादा की रक्षा हेतु तैयार हो गये। मेवाड के वनवासी भीलों को भी राज्य की स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए प्रेरित किया गया। सभी लोग मेवाड की स्वतन्त्रता तथा गौरव की रक्षा का संकल्प लेकर किसी भी भीषण स्थिति का सामना करने के लिए एक साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े हो गए। मेवाड में एक नये युग की नींव पड़ने लगी।

मुगलों से सन्धि या विग्रह का विकल्प

इस समय अकबर अपने साम्राज्य का विस्तार करने में जुटा था। वह एक चतुर राजनीतिज्ञ था। उसके चरित्र में सावधानी, साहस आदि गुण विद्यमान थे, जो एक कुशल शासक में अनिवार्य रूप से होने चाहिए। वह समस्त राजपूत जाति को अपने अधीन लाना चाहता था। इसी से उसके साम्राज्य की नींव सुदृढ़ हो सकती थी। वस्तुतः वह एक पक्का साम्राज्यवादी था। दूसरी ओर महाराणा प्रताप मेवाड को सदा-सर्वदा के लिए सर्वदा स्वतन्त्र रखना चाहते थे

और यह इसे अपना धर्म समझते थे। वह यह अच्छी तरह समझते थे कि मुगलों की अधीनता का अर्थ मेवाड़ की सार्वभौमिक स्वतन्त्रता का बलिदान है। ऐसा करने पर भले ही उन्हें सघर्षों से मुक्ति मिल जाएगी और वह एक सुखी जीवन जिएंगे, किन्तु उनके नाम के साथ लगा महाराणा शब्द अर्थहीन हो जाएगा और वह अकबर के अधीन एक जागीरदार मात्र बनकर रह जाएंगे।

मुगलों की अधीनता को स्वीकार कर अनेक राजपूत राजा अकबर से अपने पुत्रियों या बहिनों का विवाह कर चुके थे। महाराणा प्रताप इसे सबसे अधिक अपमानजनक कार्य समझते थे। उनके पूर्वजों ने भी सदा इसका विरोध किया था। अतः वह ऐसा करके अपने वश को कलंकित नहीं करना चाहते थे। यह अलग बात है कि अकबर एकपक्षीय विवाह सम्बन्धों का समर्थक नहीं था, वह चाहता था कि राजपूत राजा भी मुगल राजकुमारियों से विवाह करें। वीर विनोद में उल्लेख मिलता है कि उसने (अकबर ने) राजपूत राजाओं के समक्ष इस प्रकार के विवाहों का प्रस्ताव रखा था, किन्तु रक्त की शुद्धता बनाए रखने अथवा किन्हीं अन्य कारणों से राजपूतों ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। यह बात बड़ी ही हास्यास्पद प्रतीत होती है कि अपनी बहन-बेटियों की डोली मुगल सम्राट् के हरम में भेजने में तो राजपूत राजाओं को किसी प्रकार की लज्जा या अपमान का अनुभव नहीं होता था, किन्तु मुसलमान राजकुमारी से विवाह करना उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल जान पड़ता था, जबकि उप-पत्नियों के रूप में मुसलमान स्त्री को रखने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

इस प्रकार की परिस्थितियों पर विचार करके महाराणा प्रताप ने अन्ततः मुगल दासता को कदापि स्वीकार न करने का निर्णय लिया, क्योंकि एक ओर जीवन की समस्त सुख-सुविधाएं थीं, किन्तु पराभव और अपमानपूर्ण जीवन के मूल्य पर और दूसरी ओर सघर्ष का मार्ग था। सन्धि एव विग्रह दोनों ही में कष्ट था, किन्तु विग्रह का कष्ट भयानक होते हुए भी कीर्ति देने वाला था। सम्मान पूर्ण जीवन ही महान पुरुषों के लिए सबसे बढ़कर होता है। अतः उन्होंने द्वितीय मार्ग को ही अपनाने का निश्चय किया।

अकबर द्वारा मित्रता के प्रयास

अकबर के सामने सम्पूर्ण भारतवर्ष का निर्विरोध सम्राट होना एकमात्र लक्ष्य था। चितौड़ विजय के बाद अकबर ने मेवाड़ अभियान को रोक दिया था। सम्भवतः वह मेवाड़ के महाराणा को यह विचार करने का समय देना चाहता था कि दिल्लीपति के साथ मित्रता करने में ही उसका हित है। इस अवधि में प्रताप ने प्रमुख रूप से दो कार्य किये—पहला भावी युद्ध को ध्यान में रखकर कार्य क्षेत्र का निर्धारण तथा दूसरा पड़ोसी राज्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध, ताकि मेवाड़ पर मुगलों का यथासम्भव कम दबाव पड़े।

मेवाड़ के अभियान को स्थगित कर देने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि 1572 ई० तक अकबर सम्पूर्ण गुजरात पर अधिकार नहीं कर पाया था। अतः उसे पहले गुजरात को अधिकार में लेना था। उदयसिंह के साथ युद्ध में उसे विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई थी। इसलिए वह चाहता था कि मेवाड़ का नया महाराणा युद्ध किये बिना ही उसकी सत्ता को स्वीकार कर ले। इसके लिए उसने स्वयं प्रयास करने प्रारम्भ कर दिये। अपनी इस योजना के अन्तर्गत उसने महाराणा प्रताप के पास बार बार सन्धि प्रस्ताव भेजे, जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

जलाल खां कोरची द्वारा सन्धि प्रस्ताव

महाराणा प्रताप के सिंहासन पर बैठने के बाद छः माह बाद ही सितम्बर 1572 ई० में अकबर ने उनके पास अपना प्रथम सन्धि प्रस्ताव भेजा। इस प्रस्ताव को लेकर जलाल खां कोरची की अध्यक्षता में एक शिष्ट मण्डल प्रताप के पास पहुंचा। जलाल खां कोरची अकबर का एक अत्यन्त चतुर, वाक्पटु तथा विश्वसनीय दरबारी था। महाराणा ने उसका उचित सम्मान किया, किन्तु इस सन्धि प्रस्ताव का कोई परिणाम नहीं निकला। लगभग दो माह तक दोनों पक्षों में वार्ता चली और नवम्बर 1572 में यह शिष्टमण्डल वापस लौट गया।

अकबर इस समय अहमदाबाद में था। सन्धि प्रस्ताव की असफलता से उसे दुःख भले ही हुआ हो, किन्तु वह निराश नहीं हुआ। इसके बाद भी उसने सन्धि प्रस्तावों का क्रम बनाए रखा।

पर्याप्त विचार विमर्श के बाद अकबर ने इस कार्य के लिए मानसिंह को भेजने का निर्णय लिया। वह एक प्रभावशाली कछवाहा राजपूत था और मुगलों की सेवा में आने से पूर्व उनके मेवाड़ राज्य से घनिष्ठ सम्बन्ध रह चुके थे। वह प्रताप का समकालीन होने के साथ ही अकबर का सम्बन्धी भी था, क्योंकि उसकी बुआ जोधाबाई अकबर से ब्याही गई थी।

सन् 1573 में शोलापुर की विजय के बाद मानसिंह डूंगरपुर और सलूम्बर होता हुआ उदयपुर की ओर चल पड़ा। महाराणा प्रताप उस समय उदयपुर में ही थे। सलूम्बर के सामन्त को मानसिंह की इच्छा का पता लग गया था। उसने महाराणा के पास इसकी सूचना भेज दी और परामर्श दिया कि वह (महाराणा) मानसिंह से मिलना अस्वीकार कर दें। प्रताप मानसिंह के सभी कार्यकलापों तथा उसके मनोगत से पहले ही अवगत हो चुके थे। मानसिंह से मिलना अस्वीकार कर वह राजपूताना के अन्य शासकों को रुष्ट नहीं करना चाहते थे। अतः जून 1573 में मानसिंह के उदयपुर पहुंचने पर उन्होंने उसका सम्मान किया। सद्भावना पूर्ण वातावरण में दोनों के बीच वार्तालाप आरम्भ हुआ। उस समय प्रताप के सभी मन्त्री तथा युवराज अमरसिंह भी वहां उपस्थित थे।

इस वार्तालाप में मुख्य रूप से मानसिंह ने अकबर की धर्मनिरपेक्ष नीति तथा राजपूत राजकुमारियों से विवाह की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की तथा महाराणा को परामर्श दिया कि वह अकबर को भारत सम्राट् के रूप में स्वीकार कर उसके साथ मित्रता कर ले, किन्तु प्रताप ने राजपूतों को मुगल दासता के विरुद्ध संघर्ष करने हेतु प्रकट किया तथा सम्राट् की सत्ता को अस्वीकार कर उसकी सभा में जाना अस्वीकार कर दिया।

विभिन्न मत

महाराणा प्रताप और मानसिंह के इस मिलन के विषय में अनेक बातें कही जाती हैं। राजस्थान में प्रचलित कहानी के अनुसार महाराणा प्रताप ने वार्तालाप के बाद उदयसागर झील के तट पर मानसिंह को भोज दिया। भोजन के समय महाराणा ने पेट दर्द का बहाना कर युवराज अमरसिंह को भेज दिया। मानसिंह ने अमरसिंह पर जोर डाला कि भोजन में महाराणा को भी बुलाया जाए। अमरसिंह द्वारा महाराणा के पेट दर्द की बात बताए जाने पर भी मानसिंह जिद्द करता रहा। अन्त में प्रताप ने उसके साथ भोजन करना स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया, क्योंकि अकबर से अपनी बहनों का विवाह करने के कारण महाराणा प्रताप उसके वंश को जातिच्युत समझते थे। इस पर मानसिंह ने चुनौती देते हुए कहा -"इस पेट दर्द की दवा मैं अच्छी तरह जानता हूं। अब तक हमने आपकी भलाई चाही, किन्तु आगे सावधान रहना।"

मानसिंह द्वारा स्पष्ट रूप से युद्ध की चेतावनी दिए जाने पर एक राजपूत ने कहा —"युद्ध में अपने फूफा को भी लेते आना।" और महाराणा ने कहलवाया—"यदि आप अपनी सेना के साथ आए, तो हम मालपुरे में आपका स्वागत करेंगे और यदि अपने फूफा के बल पर आएंगे, तो जहां अवसर मिलेगा वहीं आपका सत्कार किया जाएगा।"

इसके बाद अपमानित हो कर मानसिंह वापस चला गया। मानसिंह के सम्मान में बनाया गया भोजन झील में फिकवा दिया गया और वहां की भूमि को खुदवा कर उस पर गंगाजल छिड़का गया।

राजप्रशस्ति एवं वंशभास्कर आदि काव्यों में यह घटना इसी से मिलते-जुलते

सक्षिप्त रूप में दी गयी है राजप्रशस्ति महाकाव्य में केवल इतना ही वर्णन हुआ है कि भोजन के समय महाराणा और मानसिंह में किसी विषय पर वैमनस्य हो हो गया। रामकवि द्वारा जयसिंह के विषय में लिखे गये ऐतिहासिक काव्य में केवल इतना ही वर्णन है कि भोजन के समय मानसिंह ने महाराणा से कहा कि जब आप भोजन नही करते, तो मैं क्यो करू ! महाराणा ने कहा—"कुवर आप भोजन कीजिए, मुझे कुछ पेट की शिकायत है, मैं बाद मे कर लूगा।" मानसिंह ने ने कहा "मैं आपके पेट का चूर्ण दे दूगा।" इसके बाद उसने भोजन का थाल सामने से हटा दिया और साथियो सहित खडा हो गया। रूमाल से हाथ पोछने के बाद वह बोला "कुल्ला बाद मे आने पर करूगा।"

राना सो भोजन समय
गही मान यह बात।
हम क्यों जेंवें आपहू
जेंवत हो किन आत।

कुवर आप आरो गिये,
राना भाख्यो हेरि।
मोहि गरानी सी कछू
अवै जेहू फेरी॥

कही गरानी की कुवर
भई गरानी जोहि
अटक नही कर देऊगो,
तरण चूरण तोहि।

दियो टेलि थारो कवर,
उठे सहित निज साथ।
चुल आन भरि हौं करौं,
पोछ रूमालन हाथ॥

अनेक इतिहासकारों ने भी महाराणा द्वारा मानसिंह के अपमान की घटना

चतुर्थ अध्याय

हल्दीघाटी का युद्ध

सन् 1572 के उत्तरार्द्ध से 1573 तक का पूरा समय शांति-वार्ताओं में ही बीत गया। अकबर की कूटनीति का प्रथम चरण समाप्त हो गया। मानसिंह के जाने पर अकबर ने लगभग एक युद्ध का ही निश्चय कर लिया था, किन्तु अकबर ने फिर भी मेवाड़ पर तत्काल आक्रमण नहीं किया। सन् 1574 से 1576 तक वह प्रतीक्षा करता रहा कि कदाचित् प्रताप समर्पण के लिए तत्पर हो जाए। इसमें भी जब कोई सफलता नहीं मिली। अतः वह मेवाड़ पर आक्रमण की तैयारियां करने लगा। वस्तुतः उसकी यह प्रतीक्षा उसकी विवशता थी, क्योंकि 1574 में वह बंगाल अभियान में व्यस्त था और 1575 में पंजाब सम्बन्धी मामलों में। सन् 1576 के प्रारम्भ में इन व्यस्तताओं से मुक्त होकर उसने मेवाड़ अभियान की योजना बनायी।

अकबर का मेवाड़ अभियान

मेवाड़ पर आक्रमण की योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मार्च 1576 में अकबर स्वयं अजमेर जा पहुंचा। अजमेर पहुंचने के पीछे उसका उद्देश्य यही था कि वह मेवाड़ पर आक्रमण का समीप रहकर निरीक्षण कर सके। लगभग पन्द्रह दिन तक गहन विचार-विमर्श के बाद उसने मेवाड़ पर आक्रमण करने वाली सेना का सेनापति मानसिंह को बनाने का निर्णय लिया। अब तक के मुगल इतिहास में यह प्रथम अवसर था, जब किसी हिन्दू को सेनापति बना कर भेजा गया। अकबर के अनेक मुसलमान सेनापति मानसिंह को प्रधान सेनापति बनाने के पूर्णतया विरुद्ध थे। बाद में जब युद्ध में महाराणा प्रताप पकड़े नहीं जा सके, तो कुछ मुसलमानों ने इसके लिए मानसिंह को दोषी

ठहराता। प्रसिद्ध इतिहासकार बदायूनी भी इस युद्ध में साथ गया था। वह चाहता था कि नकीब खां नामक सेनापति भी इस युद्ध में भाग ले। उसने नकीब खां से भी चलने के लिए कहा, किन्तु कहा जाता है कि मानसिंह के प्रधान सेनापति होने के कारण उसने जाना अस्वीकार कर दिया। उसने कहा— 'यदि इस सेना का सेनापति एक हिन्दू न होता, तो मैं पहला व्यक्ति होता जो इस युद्ध में शामिल होता।"

इस विरोध के होने पर भी अकबर के निर्णय में कोई परिवर्तन न हुआ और मानसिंह मेवाड़ विजय के लिए चल पड़ा।

कर्नल जेम्स टॉड ने न जाने किस आधार पर यह लिखा है कि महाराणा प्रताप के विरुद्ध मुगल सेना का सेनापतित्व अकबर के पुत्र शहजादा सलीम ने किया। तत्कालीन किसी भी इतिहासकार ने यह नहीं लिखा है कि इस युद्ध में सलीम सेनापति था। न तो अबुलफजल ने और न ही बदायूनी ने ही इसका समर्थन किया है जबकि बदायूनी इस युद्ध में स्वयं उपस्थित था। उदयपुर के जगदीश मन्दिर के शिलालेख से भी यही पुष्टि होती है कि महाराणा प्रताप के विरुद्ध मुगल आक्रमण का सेनापति मानसिंह ही था। सबसे बड़ी बात यह कि सलीम का जन्म 30 अगस्त 1569 को हुआ था, अर्थात् इस युद्ध के समय उसकी अवस्था लगभग सात वर्ष थी। अतः सात वर्ष के बालक को सेनापति बनाना हास्यास्पद ही कहा जाएगा। अबुलफजल ने लिखा है—

"राजा मानसिंह जो अकबर के दरबार में अपनी बुद्धिमत्ता, स्वामिभक्ति और साहस में अग्रणी था और जिसे अन्य पदों के साथ फर्जन्द का उच्च पद प्रदान किया गया था, महाराणा प्रताप के विरुद्ध लड़ने के लिए चुना गया।" अन्य इतिहासकारों ने भी ऐसा ही वर्णन किया है।

मानसिंह को सेनापति बनाने का औचित्य

मानसिंह को सेनापति बनाने के पीछे कई कारण थे। सर्वप्रथम वह एक वीर, बुद्धिमान, स्वामिभक्त तथा योग्य सेनापति था। वह मुगल सम्राट् के योग्यतम सेनापतियों में एक माना जाता था। अकबर का उस पर विशेष स्नेह था। इसी स्नेह और विश्वास के कारण अकबर ने उसे फर्जन्द (पुत्र) की

इस युद्ध का कारण यह भी था कि मानसिंह और [illegible] बहुत महाराणा के पास अकबर का संधि प्रस्ताव लेकर गए थे किन्तु प्रताप ने अस्वीकार कर दिया था। अनुमान लगाया गया कि [illegible] रूप से मानसिंह के मन में प्रताप के प्रति प्रबल विरोध की भावना होगी। अतः मानसिंह महाराणा का दमन करने के लिए पूरी शक्ति [illegible] रहता। मानसिंह राजपूत था और [illegible] सेनापति के रूप में देखकर ही मुगल सेना के राजपूत महाराणा के विरुद्ध लड़ सकते थे। मेवाड़ राजघराने के प्रति राजपूताने के राजपूतों के हृदय में अपार श्रद्धा थी। अधिकतर राजपूत शासक मेवाड़ के अधीन रह चुके थे। इसलिए अब भी मुगल पक्ष के राजपूत महाराणा के विरुद्ध लड़ने में संकोच अनुभव करते थे। मानसिंह को इस युद्ध में सेनापति बनाकर अकबर राजपूतों के इस संकोच को दूर करना चाहता था।

अकबर परिस्थितियों को अच्छी तरह समझता था। [illegible] इस समय की परिस्थितियों पर नियन्त्रण रखने के लिए उसने मानसिंह को सेनापति बनाया। कुछ लोगों का मत है कि अकबर ने राजपूतों का राजपूतों का विनाश करने के लिए भेजा। इसके साथ ही उसने बड़ी चतुरता से काम लिया। वह जानता था कि एक राजपूत दूसरे राजपूत से चाहे कितना ही लड़े, किन्तु विधर्मी मुगल साम्राज्य से लड़ते समय उसे महाराणा प्रताप से सहानुभूति हो सकती है। इस बात को ध्यान में रखकर उसने मानसिंह के साथ अन्य सेनापतियों के रूप में आसफ खां, मीर बख्शी, सैयद हमीम बरहा, सैयद अहमद खां, मिहतर खां, ख्वाजा मुहम्मद रफी, महाबत खान, मुजाहिद खान आदि मुसलमानों को भेजा।

मानसिंह का मेवाड़ प्रस्थान

3 अप्रैल 1576 को मानसिंह सेना लेकर मेवाड़ विजय के लिए चल पड़ा। कुछ ही दिनों बाद वह माण्डलगढ़ पहुंचा, जहां वह प्रायः दो माह तक रहा, क्योंकि शेष सेना को भी यहां आकर उसके साथ चलना था। इसके साथ ही महाराणा द्वारा खाली कराई गई बस्तियों में सैनिक-चौकियां भी स्थापित करनी थी। इसके पीछे एक कारण और भी हो सकता है, सम्भवतः मानसिंह ने यह सोचा हो कि इतनी अवधि तक माण्डलगढ़ में रुके रहने से मेवाड़ की सेना खीजकर उत्तेजित हो जाए और यही मुगल सेना पर आक्रमण कर दे। ऐसा होने पर उसे अनायास सफलता मिलने की सम्भावना थी। कुछ लेखकों ने इसका कारण बताते हुए लिखा है कि मानसिंह महाराणा को सन्धि का एक अवसर और देना चाहता था, किन्तु समस्त वृत्तान्त को देखते हुए यह सम्भावना सत्य नहीं जान पड़ती।

दो महीनों तक माण्डलगढ़ में रहने के बाद अपने सैन्य बल में अभिवृद्धि कर मानसिंह खमणोर गांव के पास आ पहुंचा। इसके बाद मोलेला गांव में उसने अपनी विशाल सेना का पड़ाव डाला। यह गांव बनास नदी के दूसरे छोर पर है। इससे केवल दस मील की दूरी पर महाराणा का सैन्य शिविर भी था। वहां पड़ाव डालने के बाद मानसिंह ने सेना के शिविर लगवाए तथा खाद्य सामग्री की व्यवस्था ठीक करने में जुट गया। समस्त व्यवस्था हो जाने के बाद वह युद्ध की रूपरेखा बनाने लगा।

महाराणा की तैयारियां

अकबर जैसे बलशाली शत्रु की सेना का सामना करना कोई सरल कार्य न था, किन्तु प्रताप इसका सामना करने के लिए तैयार थे। उन्हें मानसिंह की समस्त गतिविधियों की सूचना यथा समय प्राप्त हो गई थी। अतः वह युद्ध की सूचना यथा समय प्राप्त हो गई थी। अतः वह युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह गोगूदा पहुंच गए। उन्होंने अपने अधीन मेवाड़ के मैदानी भागों को उजाड़कर वीरान कर दिया, ताकि [illegible]

पास, आश्रय अथवा कोई भी अन्य पदार्थ न मिल सके। जिस स्थान पर भावी युद्ध होना था, वहां उन्होंने छापा मार युद्ध की भी सुन्दर व्यवस्था कर ली। मेवाड़ के सैनिकों को घाटी के चौड़े और तंग भागों में नियुक्त कर दिया गया। इन सैनिकों की स्थिति इतनी सुरक्षित थी कि उनके समीप पहुंचने के लिए शत्रु के सैनिकों को क्रम से एक-एक कर जाना पड़ता तथा लगभग डेढ़ मील का रास्ता पार करना पड़ता। यह मार्ग इतना सकरा था कि इसमें दो सैनिक एक साथ नहीं निकल सकते थे और एक घोड़े को भी इसमें बड़ी कठिनाई से ले जाया जा सकता था। कहीं-कहीं तो मार्ग इतना सकीर्ण था कि अकेले व्यक्ति को भी बड़ी ही सावधानी से आगे बढ़ना पड़ता था। समस्त घाटी पहाड़ियों से इस प्रकार घिरी थी कि शत्रु का उसमें एक बार घुसने का अर्थ अपने प्राणों की बाजी लगाना था। थोड़े से सैनिक भी यहां रहकर विशाल शत्रु सेना का सामना कर सकते थे। मेवाड़ के सैनिक इन दुर्गम मार्गों से अच्छी तरह परिचित थे, अतः कोई भी संकट आ पड़ने पर वे सरलता से सुरक्षित स्थानों पर जा सकते थे।

मुगलों की सेना के लिए इन स्थानों पर जाना अत्यन्त कठिन था। वे मैदानी भागों में तो वीरता से लड़ सकते थे, किन्तु इन घाटियों में लड़ना उनके लिए असम्भव जैसा था। स्थानीय सैनिक भोजन न मिलने पर जंगली फल-मूल खाकर गुजारा कर सकते थे, किन्तु मुगल सैनिकों के लिए ऐसा कर पाना भी सम्भव नहीं था। युद्ध के लिए प्राकृतिक रूप से सर्वथा उपयुक्त यह स्थान नाथद्वारा से ग्यारह मील दूर दक्षिण-पश्चिम में है गोगूदा और खमणोर के बीच ये दुर्गम पहाड़ियां स्थित हैं। इन्हीं में एक अत्यन्त संकीर्ण मार्ग वाली घाटी का नाम हल्दी घाटी है। यहां हल्दी के समान रंग वाली पीली मिट्टी पायी जाती है। इसीलिए इसका नाम हल्दीघाटी है।

प्रारम्भ में महाराणा प्रताप माण्डलगढ़ जाकर ही मानसिंह का सामना करना चाहते थे, किन्तु मानसिंह की सशक्त स्थिति को देखकर मेवाड़ के सामन्तों ने उन्हें ऐसा न करने का परामर्श दिया और युद्ध के लिए हल्दीघाटी का चयन किया, जिसे प्रताप ने स्वीकार कर लिया।

प्रताप की सेना में उस समय ग्वालियर का रामसिंह तंवर (अपने तीनों पुत्रों के साथ) कृष्णदास चूडावत, रामदास राठौड़ झाला मानसिंह [illegible], पुरोहित

वर्णन मिलता है और भगवान कृष्ण ने भी युद्ध मे किसी प्रकार के आदर्श को स्थान नही दिया।

कुछ अन्य पुस्तको मे लिखा है कि मानसिंह की हत्या न करने का यह परामर्श बीदा झाला ने दिया था। जैसा नैनसी ने लिखा है कि मानसिंह को महाराणा प्रताप के खमणोर आने का पता नही लग सका। ऐसी स्थिति मे महाराणा प्रताप चाहते तो रात्रि मे अकस्मात धावा बोलकर राजा मानसिंह की हत्या कर देते और भाग खड़े होते। कहा जाता है वह मानसिंह से सहयोग की आशा रखते थे। एक दिन मानसिंह लोहसिंह के पास शिकार कर रहा था। महाराणा के सामन्तों ने परामर्श दिया कि रात्रि मे हमला करके मानसिंह की हत्या कर दी जाय। यह स्थान उदयपुर से अठारह मील दूर है। यहा मानसिंह की हत्या करके भागना कठिन नही था। बीदा झाला ने इस कार्य का प्रबल विरोध किया।

इस प्रस्ताव का विरोध चाहे प्रताप ने किया हो या झाला ने, किन्तु ऐसा करना एक भयकर भूल ही कही जाएगी। यदि मानसिंह की हत्या कर दी जाती तो सम्भवतः मेवाड़ का इतिहास ही कुछ और होता। छत्रपति शिवाजी की महान सफलताओं के पीछे एक सबसे बड़ा कारण यही था कि उन्होंने युद्ध में इस प्रकार के आत्मघाती आदर्श को कोई स्थान नही दिया।

मुगल सेना से सामना

युद्ध को कार्य रूप देने के लिए मुगल सेनापति मानसिंह ने खमणोर के निकट मोलेला गांव मे शिविर लगाया। उधर महाराणा के दूतो ने यह समाचार महाराणा तक पहुंचाया। प्रताप अपनी सेना को लेकर हल्दीघाटी के दूसरी ओर सेना सहित पहुच गये। यह युद्ध जून 1576 के तृतीय सप्ताह (कुछ पुस्तकों के अनुसार 18 जून को तथा कुछ अन्य पुस्तकों के अनुसार 21 जून को) के अन्त मे प्रातः लगभग 8 बजे से आरम्भ हुआ। युद्ध भूमि मे प्रताप ने अपनी सेना को मेवाड़ की परम्परागत युद्ध शैली के अनुसार तैयार किया। इस शैली मे युद्ध भूमि मे सेना को हरावल, चन्द्रावल, वामपार्श्व, दक्षिण पार्श्व मे समायोजित किया जाता है। हरावल सेना के सबसे आगे भाग को कहा जाता है,

हल्दीघाटी में महाराणा की सेना की व्यूह रचना

चन्दावल सबसे पिछले भाग को। वाम पार्श्व हरावल से कुछ पीछे बायीं ओर तथा दक्षिण पार्श्व दायीं ओर बराबर दूरी पर दाहिनी ओर के भाग को कहा जाता है। इन सबके बीच में राजा का स्थान होता है।

हरावल भाग का नेता हाकिम खां सूर था। उसके सहयोगी के रूप में मेवाड़ के चुने हुए सामन्त थे, जिनमें सलूम्बर का चूड़ावत कृष्णदास, सरदारगढ़ का भीमसिंह, देवगढ़ का रावत सांगा, जयमल का पुत्र रामदास आदि मुख्य थे। दक्षिण पार्श्व में ग्वालियर का शासक रामशाह, उसके तीन पुत्र तथा अन्य वीर योद्धा थे। वाम पार्श्व का नेता झाला मानसिंह था, जिसके साथ झाला बीदा, मानसिंह, सोनगरा आदि सहयोगी थे। चन्दावल में पानरवा का पूजा का नेतृत्व था और उसके साथ अन्य सहयोगियों के रूप में पुरोहित जगन्नाथ, गोपीनाथ, मेहता रत्नचन्द, महासानी जगन्नाथ, चारण केशव तथा जैसा थे। इन सबके केन्द्र में महाराणा प्रताप अपने मन्त्री भामाशाह तथा उसके भाई ताराचन्द के साथ थे।

भीलों की पैदल सेना अपने पारम्परिक तीर, कमान आदि अस्त्र-शस्त्रों के साथ पूजा के नेतृत्व में आस-पास की पहाड़ियों में तैयार होकर जमे हुए थे। समस्त सेना अपने-अपने नेताओं के आदेशों की प्रतीक्षा कर रही थी। सभी वीरों के मन में मातृभूमि की रक्षा के लिए बलिदान हो जाने की तथा अपनी जाति के लिए अभिमान भाव और महाराणा के प्रति अपार श्रद्धा थी।

मानसिंह अपनी सेना के साथ हल्दीघाटी के ठीक नीचे, कुछ चौड़े किन्तु ऊबड़-खाबड़ स्थान पर पहुंच गया। आजकल यह स्थान बादशाह बाग कहा जाता है। इसके एक ओर खमणोर तथा दूसरी ओर भागल का क्षेत्र है। मानसिंह की सेना की व्यूह रचना इस प्रकार थी—सबसे आगे हरावल भाग में सैयद हासिम का नेतृत्व था। उसके साथ मुहम्मद बादक्शी रफी राजा जगन्नाथ और आसफ खां थे। दक्षिण पार्श्व में सैयद अहमद खां का नेतृत्व था। वाम पार्श्व में गाजी खां, बादक्शी तथा राजा लूणकरण थे तथा चन्दावल में सबसे पीछे मिहतर खां और माधोसिंह थे। मुख्य सेनापति मानसिंह हाथी पर बैठा हुआ केन्द्र में था। इसके साथ ही इतिहासकार बदायूनी भी इस युद्ध की घटनाओं को लिपिबद्ध करने के लिए आया था। उसे अंगरक्षकों के एक विशिष्ट दल के साथ रखा गया था।

हल्दीघाटी में महाराणा की सेना की व्यूह रचना

मुगल सेना

महाराणा की सेना

हरावल

हकीम खां सूर
चूडावत कृष्णदास
भीमसिंह
रावत सांगा
रामदास

वाम पार्श्व

झाला मानसिंह
झाला बीदा

महाराणा प्रताप
भामाशाह
ताराचन्द

दक्षिण पार्श्व

रामशाह तथा
उसके तीन पुत्र--
शालिवाहन
भगवान सिंह
और प्रताप सिंह

दोनों सेनाएं युद्ध के लिए एक-दूसरे से कुछ ही दूरी पर खड़ी थीं। महाराणा प्रताप के जीवन में उनका अभिषेक होने के बाद मुगल सम्राट् अकबर से यह प्रथम युद्ध था।

मुगल सेना की व्यूह रचना

स्थानों पर युद्ध करना कठिन और कष्टदायक था। अब [illegible]
मुगलों के पाँव उखड़ने लगे और उनकी पराजय निश्चित दिखाई देने लगी।

प्रथम सफलता से मेवाड़ के सैनिकों का उत्साह बढ़ गया। वे घाटी से निकलकर बादशाह बाग तक पहुंच गये। यह स्थान मुगल सेना के लिए भी अनुकूल था और यहां सेना युद्ध के लिए पूर्णतया तैयार थी। यह देखकर हकीम खां सूर और राणा कीका अपने सैनिकों के साथ मुगल सेना के केन्द्रीय दल पर टूट पड़े। घमासान समर प्रारम्भ हो गया। दोनों पक्षों की सेनाएं पूरे उत्साह के साथ भिड़ गईं। युद्ध क्षेत्र हुंकारों की चीत्कारों, हाथियों की चिंघाड़ों, घोड़ों की हिनहिनाहटों तथा तलवारों, धनुषों आदि के शब्दों से गूंज उठा। मेवाड़ की सेना का मुगल सेना के वाम पार्श्व पर इतना भारी दबाव पड़ा कि उसका ठहर पाना कठिन हो गया। उसमें अव्यवस्था पैदा हो गई। ग्वालियर के पदच्युत नरेश रामशाह का शौर्य प्रदर्शन अद्भुत था। राजपूत सेना का दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था। मुगलों की सेना के हरावल तथा वाम पार्श्व पर इतना दबाव पड़ा कि उनका ठहरना कठिन हो गया और ये दोनों दल युद्धभूमि से भाग खड़े हुए। इनमें गाजी खां, आसफ खां तथा मानसिंह के राजपूत सैनिक भी थे। कई मुगल सैनिक युद्धभूमि से दस-बारह मील दूर तक भाग गये।

प्रथम बार में राजपूतों की इस विजय से मुगल सेना का मनोबल घटने लगा ऐसा प्रतीत होने लगा कि मुगल सेना निश्चित ही हार जाएगी। बरहा के सैयद मुगल सेना की ओर से अभी तक वीरता के साथ लड़ रहे थे। अपनी सेना को भागते देख मुगल सेना के चन्दावल भाग में स्थित मिहतर खां आगे को बढ़ा। उसने युक्ति से काम लेते हुए ऊंचे स्वर में अकबर के पहुंचने की झूठी

दोनों सेनाए युद्ध के लिए एक-दूसरे से कुछ ही दूरी पर खड़ी थी। महाराणा प्रताप के जीवन में उनका अभिषेक होने के बाद मुगल सम्राट् अकबर से यह प्रथम युद्ध था।

मुगल सेना की व्यूह रचना

महाराणा की सेना में रामप्रसाद नाम का एक अत्यन्त कुशल और प्रशिक्षित हाथी था। सम्राट् अकबर भी इस हाथी की प्रशंसा सुन चुका था। कहा जाता है कि उसने कई बार महाराणा से यह हाथी माँगा भी था। लूना के लौट पड़ने पर राजपूतों को रामप्रसाद को युद्धभूमि में उतारना पड़ा। इसे रामप्रसाद का पुत्र प्रतापसिंह तवर संचालित कर रहा था। युद्धभूमि में उतरते ही रामप्रसाद ने मुगल सेना में खलबली मचा दी। उसने मुगलों की सेना को रौंदना आरम्भ कर दिया। कई सैनिकों का विनाश देखकर मुगल सेना आतंकित होने लगी। रामप्रसाद का सामना मुगल सेना का हाथी गजराज कर रहा था, जिसका संचालक कमालखान था। रामप्रसाद के समक्ष गजराज फीका पड़ गया। यह देख मुगल सेना ने अपना एक अन्य हाथी रणमन्दर भी मैदान में उतार दिया। अब मुगलों के दो हाथी रामप्रसाद का सामना करने लगे। रामप्रसाद इन दोनों से जूझ रहा था। वस्तुतः मुगल यही चाहते थे। उन्होंने रामप्रसाद के महावत पर तीरों की वर्षा करना आरम्भ कर दिया, जिससे महावत मारा गया। इसे अच्छा अवसर देख दोनों मुगल हाथियों को रामप्रसाद से भिड़ा दिया गया और उसे फँसा लिया। रामप्रसाद पर मुगलों की आँखें कई दिनों से गड़ी थीं। अतः वे उसे फँसाकर अपनी सेना में ले गए।

महाराणा प्रताप की युद्धभूमि में प्रारम्भ से ही यह हार्दिक इच्छा थी कि उनका मानसिंह से सीधा सामना हो, किन्तु उन्हें यह अवसर नहीं मिल पा रहा था। इधर हाथियों के युद्ध में मानसिंह के आगे आ जाने पर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्हें इसी की प्रतीक्षा थी। वह उसके साथ दो-दो हाथ करने को व्यग्र हो रहे थे। उन्हें लगा कि सौभाग्य से यह अवसर मिल गया। वह सीधे मानसिंह के सामने चले गए। दोनों एक दूसरे पर अपने दाव लगाने लगे। महाराणा ने अपने घोड़े चेतक को संकेत किया। चेतक ने अपने अगले पाँव मानसिंह के हाथी की सूँड पर रख दिए। महाराणा ने भाले से वार किया, किन्तु मानसिंह अपने हाथी के हौदे में घुस गया। प्रताप का भाला उसके कवच में घुस पड़ा, जिससे उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि मानसिंह मर गया है। मानसिंह का महावत घायल हो गया और नीचे गिर पड़ा।

इस घटना का अनेक इतिहासकार ने वर्णन किया है, किन्तु युद्धभूमि में उपस्थित होते हुए भी बदायूनी इस घटना को छोड़ गया है। वह एक कट्टर

[illegible] मानसिंह के मध्य युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध [illegible] [illegible] सामन्तों तथा [illegible] के बीच घमासान लड़ाई के पश्चात खून की ना[illegible] [illegible] पर [illegible] गई। यहां भी प्रताप की सेना ने अलौकिक शौर्य का [illegible] किया। [illegible] मुगल सेना का मनोबल [illegible] होने लगा। प्रताप की सेना की [illegible] असाधारण [illegible] बहादुरी से [illegible] दिखाई। उनके द[illegible] [illegible] से निकलकर मुगल सेना पर टूट पड़े। मुगल सेना ने प्रताप की सेना [illegible] धैर्य पूर्वक अपनी रक्षा की। किसी तरह मुगलों की सेना भाग नहीं हो [illegible] गई अन्यथा उनकी पराजय निश्चित हो गयी थी। अभी तक महाराणा की सेना के दो वीर [illegible] शाहबाज़ खाँ जगमाल का पु[illegible] रामदास वीरगति को प्राप्त हो गये थे।

राजपूतों के दबाव को बढ़ता देख मानसिंह भी युद्ध में उतर पड़ा। वह हाथी पर बैठकर युद्ध कर रहा था। राजपूत सैनिक उसका सामना करने लगे, तभी मुगल शाही हाथियों के दल का सेनापति हुसैन खाँ भी युद्ध करने के लिए आगे आ गया। महाराणा के हाथी सवार उसका सामना करने लगे। उसने एक हाथी पर मुगलों ने घात लगाकर हमला कर दिया। फलतः उसका महावत गम्भीर रूप से घायल हो गया और उस हाथी को मुगलों ने अपने अधिकार में ले लिया।

तत्कालीन युद्धों में हाथियों के युद्ध का विशेष महत्त्व था। हल्दीघाटी युद्ध में हाथियों की लड़ाई का विशेष वर्णन हुआ है। मानसिंह हाथी पर आरूढ था। इस युद्ध में उसने हाथियों की लड़ाई में अच्छे दाव-पेंच दिखाए। राजपूतों के लूना हाथी तथा मुगलों के गजमुख हाथी की परस्पर भिड़न्त हो गयी। लूना ने गजमुख को पराजित कर दिया। गजमुख को हारते देख मुगल सेना के किसी सैनिक ने लूना के महावत पर हमला कर दिया। फलतः महावत घायल हो गया। गजमुख वापस लौट गया था। लूना भी अपने घायल महावत को लेकर वापस लौट गया।

महाराणा की सेना में रामप्रसाद नाम का एक अत्यन्त कुशल और प्रशिक्षित हाथी था। सम्राट् अकबर भी इस हाथी की प्रशंसा सुन चुका था। कहा जाता है कि उसने कई बार महाराणा से यह हाथी मांगा भी था। लूना के लौट पड़ने पर राजपूतों को रामप्रसाद को युद्धभूमि में उतारना पड़ा। उसे रामप्रसाद को पुन प्रतापसिंह तंवर संचालित कर रहा था। युद्धभूमि में उतरते ही रामप्रसाद ने मुगल सेना में खलबली मचा दी। उसने मुगलों की सेना को रौंदना आरम्भ कर दिया। अपने सैनिकों का विनाश देखकर मुगल सेना आतंकित होने लगी। रामप्रसाद का सामना मुगल सेना का हाथी गजराज कर रहा था, जिसका संचालक कमालखान था। रामप्रसाद के समक्ष गजराज फीका पड़ गया। यह देख मुगल सेना ने अपना एक अन्य हाथी रणमन्दिर भी मैदान में उतार दिया। अब मुगलों के दो हाथी रामप्रसाद का सामना करने लगे। रामप्रसाद इन दोनों से जूझ रहा था। वस्तुत मुगल यही चाहते थे। उन्होंने रामप्रसाद के महावत पर तीरों की वर्षा करना आरम्भ कर दिया, जिससे महावत मारा गया। इसे अच्छा अवसर देख दोनों मुगल हाथियों को रामप्रसाद से भिड़ा दिया गया और उसे फंसा लिया। रामप्रसाद पर मुगलों की आंखें कई दिनों से लगी थी। अतः वे उसे फंसाकर अपनी सेना में ले गए।

महाराणा प्रताप की युद्धभूमि में प्रारम्भ से ही [illegible] दर्शा दी।

घोषणा करते हुए कहा—"बादशाह सलामत स्वयं आ पहुँचे हैं।" इस घोषणा से स्थिति पलट गई। भागती हुई मुगल सेना नये उत्साह के साथ लौट पड़ी और आत्मविश्वास की भावना से युद्ध करने लगी। इससे मुगलों की पराजय होते-होते टल गई।

पुनः एक उत्साह के साथ युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध करते-करते दोनों सेनाएं खमनोर तथा भागल के बीच बनास नदी के तट पर खून की तलाई नामक स्थान पर पहुंच गई। यहां भी मेवाड़ की सेना ने अलौकिक वीरता का प्रदर्शन किया। उसके प्रहारों से मुगल सेना का महाविनाश होने लगा। वनवासी भीलों ने भी अपने पारम्परिक हथियारों से अपूर्व वीरता दिखाई। उनके दल पहाड़ियों से निकलकर मुगल सेना पर टूट पड़े। मुगल सेना ने मेवाड़ की सेना से वीरता पूर्वक अपनी रक्षा की। किसी तरह मुगलों की सेना भाग खड़ी होने से बच गई, अन्यथा उसकी पराजय निश्चित ही लग रही थी। अभी तक महाराणा की सेना के दो वीर ग्वालियर का रामशाह तथा जयमाल का पुत्र रामदास वीरगति को प्राप्त हो गये थे।

राजपूतों के दबाव को बढ़ता देख मानसिंह भी युद्ध में उतर पड़ा। वह हाथी पर बैठकर युद्ध कर रहा था। राजपूत सैनिक उसका सामना करने लगे, तभी मुगल शाही हाथियों के दल का सेनापति हुसैन खां भी युद्ध करने के लिए आगे आ गया। महाराणा के हाथी सवार उनका सामना करने लगे। उनके एक हाथी पर शत्रुओं ने घात लगाकर हमला कर दिया। फलतः उसका महावत गम्भीर रूप से घायल हो गया और उस हाथी को मुगलों ने अपने अधिकार में ले लिया।

तत्कालीन युद्धों में हाथियों के युद्ध का विशेष महत्त्व था। हल्दीघाटी युद्ध में हाथियों की लड़ाई का विशेष वर्णन हुआ है। मानसिंह हाथी पर आरूढ़ था। इस युद्ध में उसने हाथियों की लड़ाई में अच्छे दाव-पेच दिखाए। राजपूतों के लूना हाथी तथा मुगलों के गजमुख हाथी की परस्पर भिड़न्त हो गयी। लूना ने गजमुख को पराजित कर दिया। गजमुख को हारते देख मुगल सेना के किसी सैनिक ने लूना के महावत पर हमला कर दिया। फलतः महावत घायल हो गया। गजमुख वापस लौट गया था। लूना भी अपने घायल महावत को लेकर वापस लौट गया।

महाराणा की सेना में रामप्रसाद नाम का एक अत्यन्त कुशल और प्रशिक्षित हाथी था। सम्राट् अकबर भी इस हाथी की प्रशंसा सुन चुका था। कहा जाता है कि उसने कई बार महाराणा से यह हाथी मांगा भी था। लूना के लौट पड़ने पर राजपूतों को रामप्रसाद को युद्धभूमि में उतारना पड़ा। इसे रामशाह का पुत्र प्रतापसिंह तंवर संचालित कर रहा था। युद्धभूमि में उतरते ही रामप्रसाद ने मुगल सेना में खलबली मचा दी। उसने मुगलों की सेना को रौंदना आरम्भ कर दिया। अपने सैनिकों का विनाश देखकर मुगल सेना आतंकित होने लगी। रामप्रसाद का सामना मुगल सेना का हाथी गजराज कर रहा था, जिसका संचालक कमालखान था। रामप्रसाद के समक्ष गजराज फीका पड़ गया। यह देख मुगल सेना ने अपना एक अन्य हाथी रणमन्दर भी मैदान में उतार दिया। अब मुगलों के दो हाथी रामप्रसाद का सामना करने लगे। रामप्रसाद इन दोनों से जूझ रहा था। वस्तुतः मुगल वहां घातक थे। उन्होंने रामप्रसाद के महावत पर तीरों की वर्षा करना आरम्भ कर दिया, जिससे महावत मारा गया। इसे अच्छा अवसर देख दोनों मुगल हाथियों को रामप्रसाद से भिड़ा दिया गया और उसे फंसा लिया। रामप्रसाद पर मुगलों की आंखें कई दिनों से लगी थीं। अतः वे उसे पकड़कर अपनी सेना में ले गए।

महाराणा प्रताप की युद्धभूमि में प्रारम्भ से ही [illegible]

मुसलमान था। उसने प्रताप पर तीरों की वर्षा का तो अतिरंजित वर्णन किया है, किन्तु इस घटना का नहीं अतः उसका यह वर्णन पक्षपातपूर्ण माना जा सकता है। राजपूत लोग इस घटना को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करते हैं। अबुलफजल ने भी महाराणा और मानसिंह के परस्पर युद्ध का वर्णन किया है। जो भी हो इतना निश्चित है कि महाराणा प्रताप ने मानसिंह का सीधे सामना अवश्य किया था, जिसमें उनका पलड़ा भारी रहा।

मानसिंह के हाथी की सूंड पर पैर रखते समय महाराणा के चेतक का पैर कट गया था, क्योंकि सूंड में तलवार लटक रही थी। इस विकट स्थिति में प्रताप शत्रुओं के सैनिकों से घिर गए। स्थिति की भयंकरता को देखकर झाला मानसिंह ने अपूर्व वीरता का प्रदर्शन कर महाराणा के प्राणों की रक्षा की। उसने प्रताप का राजछत्र स्वयं ले लिया तथा प्रताप को युद्धभूमि से चले जाने को बाध्य किया। झाला पर राजचिह्न देखकर मुगल सेना ने उसे ही महाराणा समझा और घेर लिया झाला अत्यन्त वीरता के साथ शत्रुओं का संहार करने लगा। आखिर घिरा हुआ अकेला झाला कब तक इतने शत्रुओं का सामना करता। लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गया और प्रताप वहां से सुरक्षित बच निकले।

घायल चेतक को लेकर महाराणा युद्धभूमि से भाग गए। घायल होते हुए भी चेतक उन्हें युद्धभूमि से लगभग दो मील दूर बालिया गांव तक ले गया, जहां उसने दम तोड़ दिया। अपने इस प्रिय घोड़े की याद में महाराणा ने उस स्थान पर उसका स्मारक बनवाया, जहां उसकी मृत्यु हुई थी। उसके स्मारक पर एक पुजारी की भी नियुक्ति की गयी, जिसे कुछ भूमि दान स्वरूप दी गयी। यह स्मारक जीर्ण-शीर्ण अवस्था में अभी तक विद्यमान है।

प्रताप शक्तिसिंह मिलन

महाराणा प्रताप का छोटा भाई शक्तिसिंह अपने पिता के समय ही अकबर की सेवा में चला गया था। इस युद्ध में वह मुगल सेना की ओर से लड़ रहा था। इधर जब महाराणा युद्धभूमि से बच निकले, तो दो मुगल सैनिकों ने उन्हें पहचान लिया। दोनों प्रताप का पीछा करने लगे। शक्तिसिंह

ने उन्हें पीछा करते देख लिया। आगे एक नाला आया जिसे देखकर वह घोड़ा न रुक सका और शक्त भी उन दोनों के पीछे हो लिया। कुछ आगे निकलते ही उसने दोनों सैनिकों को मार डाला। इसके बाद वह प्रताप से मिला। चेतक मर चुका था। महाराणा पर फिर कोई संकट न आ पड़े इसलिए उसने अपना घोड़ा उन्हें दे दिया। मुगल सेना में वापस आ कर उसने कह दिया कि प्रताप ने दोनों सैनिक तथा उसका घोड़ा मार डाला।

कहा जाता है कि भागते हुए महाराणा का पीछा मुगल सेना ने इसलिए नहीं किया कि मानसिंह नहीं चाहता था कि प्रताप को बन्दी बनाकर अकबर के समक्ष ले जाया जाए और कुछ लोगों का यह भी मत है कि महाराणा प्रताप की सहायता के लिए शक्तिसिंह को भी उसी ने भेजा था। मुगल सेना की जीत के बाद पराजित सेना का पीछा करती थी तथा लूट मचाती थी। यहां ऐसा भी कुछ नहीं हुआ। इस सबके पीछे मानसिंह का ही हाथ बताया जाता है। इस विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए श्री राजेन्द्र बीड़ा ने लिखा है—

"हल्दीघाटी विजय के बाद भागते हुए राणा प्रताप का पीछा नहीं किया गया। दो मत वाले मुगलमानों ने घायल प्रताप का पीछा किया। परन्तु यह बात *राजा मानसिंह को अच्छी नहीं लगी। उसने शक्तिसिंह को राणा प्रताप* के बचाव के लिए भेजा और वह बच गया। इस सम्बन्ध में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। कहीं कुछ स्पष्ट लिखा नहीं मिलता।"

युद्ध का परिणाम

हल्दीघाटी की यह लड़ाई प्रातः आठ बजे से दोपहर तक चलती रही। ऊपर लिखा जा चुका है कि पहले मेवाड़ का पलड़ा भारी रहा। किन्तु बाद में मुगलों की स्थिति संभल गयी। महाराणा के युद्ध-स्थल से चले जाने पर उनकी सेना में अव्यवस्था फैल गयी। झाला मानसिंह, राठौड़ शंकरदास, रावत नेतसी आदि ने कुछ समय तक वीरता के साथ मुगल सेना का सामना किया, किन्तु मानसिंह के अंगरक्षकों के आक्रामक हमले के कारण उन्हें पीछे हटना पड़ा। दोपहर तक मेवाड़ की सेना के पाँव उखड़ गये। मुगल सेना ने अपना दबाव बनाये रखा। परिणामस्वरूप अनेक राजपूत सैनिक वीरगति को प्राप्त हो गए। अन्त में मुगल सेना जीत गई।

मुसलमान था। उसने प्रताप पर तीरों की वर्षा का तो उल्ले-
है, किन्तु इस घटना का नहीं अतः उसका यह
सकता है। राजपूत स्रोत इस घटना का बढ़ा-चढ़
अबुलफजल ने भी महाराणा और मानसिंह के परस्पर
जो भी हो इतना निश्चित है कि महाराणा प्रताप ने म.
अवश्य किया था, जिसमें उनका पलड़ा भारी रहा।

मानसिंह के हाथी की सूंड़ पर पैर रखते समय
पैर कट गया था, क्योंकि सूंड़ में तलवार लटक रही थी
में प्रताप शत्रुओं के सैनिकों से घिर गए। स्थिति की
झाला मानसिंह ने अपूर्व वीरता का प्रदर्शन कर महाराणा
की। उसने प्रताप का राजछत्र स्वयं ले लिया तथा प्रताप को
जाने को बाध्य किया। झाला पर राजचिह्न देखकर मुग़
महाराणा समझा और घेर लिया झाला अत्यन्त वीरता के स
संहार करने लगा। आखिर घिरा हुआ अकेला झाला कब त
का सामना करता। लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गया औ
से सुरक्षित बच निकले।

घायल चेतक को लेकर महाराणा युद्धभूमि से भाग गए।
हुए भी चेतक उन्हें युद्धभूमि से लगभग दो मील दूर बालिया
गया, जहां उसने दम तोड़ दिया। अपने इस प्रिय घोड़े की याद में
ने उस स्थान पर उसका स्मारक बनवाया, जहां उसकी मृत्यु हुई
स्मारक पर एक पुजारी की भी नियुक्ति की गयी, जिसे कुछ भूमि
दी गयी। यह स्मारक जीर्ण-शीर्ण अवस्था में अभी तक विद्यमान है।

प्रताप शक्तिसिंह

महाराणा
अकबर की सेवा
लड़ रहा
सैनिकों

हताहतों की संख्या

हल्दी घाटी का युद्ध लगभग चार घंटे तक चला। इसमें दोनों पक्षों के अनेक हाथी घोड़ों व कई सैनिक मारे गए। मेवाड़ पक्ष के वीरगति प्राप्त करने वाले सैनिकों में झाला मान का पुत्र राठौड़ रामदास, रामशाह तंवर तथा उनका पुत्र शालिवाहन आदि मुख्य हैं। मुगल सेना के जितने भी वीर मेवाड़ की ओर से लड़ रहे थे, उनमें से कोई भी नहीं बचा। दोनों पक्ष से कुल कितने सैनिकों का अन्त हुआ, इस विषय में इतिहास की पुस्तकों में भिन्न भिन्न मत हैं। 'तबकाते अकबरी' के अनुसार मुगल सेना के 350 हिन्दू तथा 120 मुसलमान मारे गए और 300 से अधिक मुसलमान घायल हुए। बदायूनी के अनुसार 150 मुगल सैनिक तथा 500 मेवाड़ के सैनिकों की मृत्यु हुई। इकबालनामा में स्पष्ट लिखा है कि मुगल पक्ष के केवल 50 तथा महाराणा के 500 सैनिकों ने प्राणों से हाथ धोए। इकबालनामा में दिया गया यह वर्णन भी सत्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि मुगलों के केवल 50 सैनिकों के मारे जाने की बात अस्वाभाविक जैसी लगती है। वीर विनोद आदि राजपूत ग्रंथों के अनुसार मेवाड़ के 20000 तथा मुगलों के असंख्य सैनिक मारे गए। यह वर्णन भी पक्षपात युक्त तथा अतिशयोक्ति पूर्ण मालूम होता है।

शक्तिसिंह से मिलने के बाद महाराणा प्रताप शाम को कोल्यारी गाव पहुंचे। युद्ध समाप्त हो जाने पर शाम को सभी घायल राजपूत सैनिकों को भी वहीं लाया गया। वहां सभी घायलों का प्राथमिक उपचार किया गया। इसके बाद घायलों के पूर्ण उपचार की व्यवस्था की गई।

यद्यपि युद्ध मे किसकी विजय हुई इसमे विवाद है, फिर भी अधिकांश विद्वान इसी पक्ष मे हैं कि मुगलों की ही जीत हुई। जहां मुसलमान इतिहासकारों ने मुगलो की जीत का उल्लेख किया है, वही कुछ लोगों ने महाराणा के जीतने का समर्थन किया है। बदायूनी ने मुगलो की विजय होना लिखा है। वह स्वयं इस विजय का समाचार लेकर अकबर के पास गया था, किन्तु मार्ग मे वह जिसे भी मुगलों की जीत का समाचार देता, उसकी बात पर कोई विश्वास नही करता था। दोनों पक्षो द्वारा अपनी-अपनी विजय बताने का यह अर्थ भी हो सकता है कि इस युद्ध मे मुगल पक्ष को उनके वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हुई। अकबर की ओर से कठोर आदेश था कि प्रताप को पकड़ लिया जाए। इस युद्ध मे न तो प्रताप पकडे जा सके न मेवाड पर ही अधिकार हुआ। यह युद्ध कोई निर्णयात्मक युद्ध नही था। इस दृष्टि मे इसे प्रताप की पराजय भी नही कहा जा सकता। हां, यह उनकी शक्ति के लिए एक आघात अवश्य था।

इस युद्ध मे मुगल सेना को भी भारी क्षति हुई थी। सम्भवतः उसमे महाराणा का पीछा करने की सामर्थ्य भी नही रही थी। इस युद्ध मे वांछित सफलता न मिलने पर अकबर क्षुभित हो उठा। उसने इसका दोषी मानसिंह को माना, क्योंकि वही इस युद्ध का सेनापति था इसलिए अकबर ने मानसिंह के दरबार मे प्रवेश पर छः महीने के लिए रोक लगा दी थी। युद्ध की इसी अनिर्णयात्मकता की ओर संकेत करते हुए डा० श्रीवास्तव ने लिखा है—

"हल्दीघाटी की विजय जितनी कठिनाई से मिली, उतनी ही निरर्थक रही। मानसिंह का अभियान अपने मुख्य लक्ष्य मे असफल रहा। अर्थात् राणा प्रताप न मारा जा सका, न पकड़ा जा सका और न ही मेवाड़ को आधीन बनाया जा सका। इस युद्ध से राणा की शक्ति खण्डित नही हुई। इससे उसके भाग्य को क्षणिक धक्का भर लगा। कई दृष्टियों से यह युद्ध एक तरह से वरदान सिद्ध हुआ। हताश करने के बजाय उसने राणा के संकल्प को और भी दृढ़ बना दिया। संसार के सबसे शक्तिशाली और सम्पन्न सम्राट् का उसके सैनिकों ने जिस वीरता से सामना किया, उससे अपने पक्ष की नैतिक शक्ति मे उसकी आस्था और भी बढ़ गई। और संग्राम को जारी रखने का उसका निश्चय और भी पक्का हो गया। 21 जून 1576 का युद्ध इससे पहले और इसके बाद मे प्रताप की

महाराणा की हार के कारण

यद्यपि राजपूतों मे वीरता, उत्साह आदि सैनिकोचित गुणों की कोई कमी नही थी, फिर भी मेवाड की पराजय क्यो हुई ? इसका कारण जानने के लिए महाराणा की युद्धनीति, तत्कालीन परिस्थितियों आदि का विश्लेषण करना अनिवार्य हो जाता है । अपने अभिषेक के बाद प्रताप का मुगल सम्राट् से यह प्रथम युद्ध था । यद्यपि वह अपने पिता उदयसिंह के समय युद्धों मे भाग ले चुके थे, फिर भी उस समय वह एक राजकुमार ही थे । साथ ही उदयसिंह के समय जब मुगलों का मेवाड़ पर आक्रमण हुआ भी, तो उस समय पूरा राजपरिवार वनों मे सुरक्षित स्थानों पर भेज दिया गया था । अत उन्हे इस प्रकार के युद्धों का पूर्व अनुभव नही था । हल्दीघाटी युद्ध मे वह परम्परागत शैली से लडे थे । यह उनकी पराजय का सबसे बड़ा कारण था । महाराणा प्रताप को *अपनी समस्त सेना को एक स्थान पर नही लाना चाहिए था । जिस दर्रे के मुंह* पर पहले राजपूतों का पलड़ा भारी था, वहा से आगे बढ़ना भी उनके लिए घातक सिद्ध हुआ वह स्थान उबड़-खाबड होने से मुगल सेना के लिए कष्टप्रद था । अतः उसी स्थान पर शत्रु पक्ष को उलझाए रखना मेवाड़ के हित मे था । महाराणा अपनी सेना को घाटी के विभिन्न दरों तथा पहाड़ियो मे छितरा देते । इस के बाद विरोधी सेना आगे बढती और घिर जाती । फिर उसे सरलता से *समाप्त किया जा सकता था । महाराणा के सैनिक आरम्भ मे ही* जब मुगल सेना पीछे हटी तो वेग से उन पर टूट पड़े । इससे वह शीघ्र ही थक गए । मुगल सैनिक पूरे अनुशासन से लड़े, जबकि प्रताप के बच निकलने पर मेवाड़ की सेना मे अव्यवस्था फैल गई । इन सब के साथ ही महाराणा की सेना की तुलना मे शत्रुसेना का अधिक होना भी इस पराजय का एक कारण था, इन समस्त कारणों पर प्रकाश डालते हुए डा० गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है -

"इसमें कोई सन्देह नही कि परम्परागत युद्ध शैली से उसे हारना पड़ा । प्रथम तो उसका घाटी के तंग भाग मे अपने सैनिकों के विभिन्न भागों मे बांट-कर जमाना उचित नही था । यदि उपयुक्त ढंग यही हो सकता था कि वह अपनी सेना की टुकड़ियों को घाटियों, दर्रों और पहाड़ियों मे इस प्रकार बिखेरे हुए रखता कि शत्रु घाटी मे ही घिर जाते और दर्रों मे उनका विनाश

सर्वनाश अथवा मौत ही सिद्ध होता। दूसरा ज्यों ही मुगलों का अग्रगामी दल पीछे हटा, राणा ने अपनी सम्पूर्ण सेना को आरम्भ में ही युद्ध में धकेलकर थका दिया। तीसरा, राजपूत तथा मुगल वर्णन जो युद्ध के सम्बन्ध में लिखता, उसमें स्पष्ट है कि मुगलों से दूसरी बार मुठभेड़ करते समय राजपूतों में व्यवस्था न रह सकी, परन्तु उसके विपरीत मुगलों ने पूर्ण अनुशासन से युद्ध की गतिविधि को निभाया। शत्रुओं का बहुसंख्यक होना और उनसे राजपूतों में डटकर मुकाबला करना भी राणा तथा उनके साथियों के पीछे हटने का कारण बना। तथापि प्रताप ने संकटकाल में शान्त मनोवृत्ति एवं सूझ-बूझ से युद्ध-स्थल में निकलकर अपने आप को ऐसा बचा लिया कि मारे जाने की सम्भावना को टाल दिया। यह उसका एक श्लाघनीय कदम था। वहाँ से निकलकर उसने अपने देश की रक्षा के कार्य में सक्रिय भाग लिया, जो उसके वहाँ नष्ट हो जाने से सर्वदा श्रेष्ठ था।'

निश्चय ही युद्ध-भूमि से निकलकर अपने को बचा लेना महाराणा का प्रशंसनीय कार्य था। यदि वह वहीं जूझते हुए मारे जाते, तो मेवाड़ का इतिहास उस गौरव का अधिकारी नहीं हो पाता, जो उसे उनके जीवित रहने पर प्राप्त हुआ। उसकी तुलना में हल्दीघाटी की पराजय एक तुच्छ घटना थी और उसे पराजय कह ही, क्यों यह तो मेवाड़ के गरिमामय इतिहास के एक सुनहरे अध्याय का बीजमात्र था, एवं लम्बे संघर्ष की आधारशिला थी।

पञ्चम अध्याय

घात-प्रतिघात

मानसिंह का गोगूंदा पर अधिकार

प्रताप का सुरक्षित बच निकलना मेवाड़ के लिए सबसे बड़े सौभाग्य की बात थी। कोल्यारी में घायलों की चिकित्सा की व्यवस्था कर प्रताप शीघ्र ही गोगूंदा होते हुए मझेरा पहुंचे। वहां उन्होंने भीलों को एकत्रित कर एक नयी सेना बनाई। महाराणा के गोगूंदा के निकट होने की सूचना मानसिंह को मिल गई। इसे उसने भावी खतरे का संकेत समझा। अतः वह तुरन्त ही सेना लेकर गोगूंदा की ओर चल पड़ा और हल्दीघाटी युद्ध के तीसरे ही दिन 21 जून 1576 को उसने गोगूंदा पर अपना अधिकार कर लिया।

गोगूंदा में मुगल सेना की स्थिति

यहां एक बन्दी के समान जीवन बिता रही थी। श्री ओझा जी ने इस विषय में लिखा है—

"गोगूदा पहुंचने पर भी शाही अफसरों को यही भय बना रहा कि प्रताप उन पर टूट न पड़े। शाही सेना गोगूदे में बंदी की भांति रही और अन्त तक न रुक सकी, जिससे उसकी और भी दुर्दशा हुई।"

इसी भय के कारण मानसिंह ने पूरे गोगूदा की एक कृत्रिम किलेबन्दी जैसी कर दी। चारों ओर खाई खुदवाकर ऊंची दीवार बना दी गई, जिससे कोई उस पारकर अन्दर न घुस सके। इसका वर्णन करते हुए निजामुद्दीन अहमद बख्शी ने लिखा है:

"अमीरों को डर था कि कहीं राणा रात्रि के समय उनपर न टूट पड़े। इसलिए अपने बचाव के लिए उन्होंने सभी मुहल्लों में बाड़ खड़ी करवा दी और गांव के चारों ओर खाई खुदवाकर इतनी ऊंची दीवार बनवा दी कि घुड़सवार भी उसे न फांद सके। इसके बाद ही वे निश्चिन्त हो सके। इसके बाद वे मृत व्यक्तियों तथा घोड़ों की सूची बनाने लगे, तो सैयद अहमद खां बारहा ने कहा—"ऐसी सूची बनाने से क्या लाभ। आवश्यकता तो भोजन का प्रबन्ध करने की है।"

बदायूनी का अकबर के पास जाना

अकबर युद्ध के समाचारों की तीव्रता से प्रतीक्षा कर रहा था। उसने महमूद खां को युद्ध के समाचारों की रिपोर्ट लाने के लिए गोगूदा भेजा। गोगूदा से लौटकर उसने युद्ध का समस्त वृत्तान्त अकबर को कह सुनाया। हल्दीघाटी की जीत से अकबर को प्रसन्नता हुई, किन्तु महाराणा के बच निकलने के समाचार से वह अत्यन्त खिन्न हुआ।

मेवाड़ की सेना से छीना गया रामप्रसाद हाथी अकबर के लिए अत्यन्त महत्त्व रखता था, जिसे वह कई बार प्रताप से मांग भी चुका था, किन्तु महाराणा ने इसे टाल दिया था। यह हाथी अभी तक गोगूदा की सेना में ही था। शाही सेना के अधिकारियों ने रामप्रसाद को शीघ्र अकबर के पास भेज देना उचित समझा। आसफ खां के परामर्श पर हाथी के साथ बदायूनी

प्रताप द्वारा गोगूंदा वापस लेना

इधर मुगल दल हल्दीघाटी युद्ध की समीक्षा कर भावी युद्धों की रूप-रेखा बनाने में व्यस्त था और इधर महाराणा प्रताप मुगलों द्वारा अधिकृत अपने राज्य के भागों को वापस लेने पर विचार कर रहे थे। हल्दीघाटी युद्ध के तुरन्त बाद गोगूंदा पर अधिकार कर लिया था, किन्तु प्रताप भी चुप बैठने वाले नहीं थे। उनकी गतिविधियों से मुगल सेना का गोगूंदा में रहना दूभर हो गया था। इसी बीच प्रताप की सेना ने गोगूंदा पर पुनः अधिकार

करने का अच्छा अवसर मिल गया। अकबर ने रुष्ट होकर मानसिंह को गोगूदा से वापस अजमेर बुला लिया। उसके स्थान पर कुतुबुद्दीन मुहम्मद खां, कुली खां आदि को गोगूदा भेज दिया। उन्हें आदेश दिया गया कि वे पूरे मेवाड़ का छान डालें तथा प्रताप जहां भी मिलें, उन्हें मार डाला जाए।

मानसिंह के गोगूदा में रहते समय भी, यदा-कदा मुगल सैनिकों के खाद्य सामग्री के लिए बाहर जाते समय महाराणा के सैनिक तथा उनके सहयोगी भील उन पर आक्रमण कर देते थे।

मानसिंह का वहां से जाना महाराणा के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ। अकबर द्वारा भेजे गये नये सेनापति कुतुबुद्दीन मुहम्मद खान और कुली खां गोगूदा की स्थिति पर अपना नियन्त्रण नहीं रख सके। महाराणा प्रताप ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया। जुलाई 1576 ई० में उन्होंने पुन: गोगूदा पर आक्रमण कर दिया। मुगलों की सेना उनका सामना करने में असमर्थ रही और वहां से भाग खड़ी हुई। इस प्रकार प्रताप का बिना अधिक संघर्ष के ही गोगूदा पर अधिकार हो गया।

गोगूदा पर अधिकार करने के बाद महाराणा ने कुम्भलगढ़ को अपना निवास-स्थान बनाया। गोगूदा तथा कुम्भलगढ़ दोनों स्थानों पर नये प्रशासकों की नियुक्ति की गई। इसके बाद वह अपने नये कार्यक्रमों के विषय में विचार करने लगे।

अकबर का मेवाड़ प्रस्थान

अकबर के लिए मेवाड़ प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था। इस अध्याय में वर्णित घटनाओं से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। अतः उसने स्वयं प्रताप का दमन करने का निर्णय लिया, किन्तु उसने अपने इस निर्णय को प्रकट नहीं किया। राजपूताना जाते समय उसने अपने वहां जाने का उद्देश्य मेवाड़ में जीते हुए प्रदेशों में शिकार की इच्छा बताया। वह प्रतिवर्ष सितम्बर के आस-पास ख्वाजा के उर्स में अजमेर जाता था, अतः वह आक्रमण की योजना बनाने के लिए मार्च में ही अजमेर गया था, और सितम्बर में पुनः अजमेर पहुंच

गया। यहां उसने ख्वाजा की मजार पर दुआएं मांगी तथा प्रताप को मिटा की योजना बनाने लगा।

हल्दीघाटी युद्ध में विजय पाने के उपलक्ष्य में अनेक वीरों को पदोन्नति तथा पुरस्कार दिये गये। मिहतर खां को विशेष रूप से सम्मानित किया गया क्योंकि उसने बादशाह के आने की झूठी खबर फैलाकर भागती हुई मुगल सेना को पराजित होने से बचा लिया था, किन्तु मानसिंह तथा आसफ खां से अकबर ने मिलना भी अस्वीकार कर दिया।

हल्दीघाटी की विजय तथा उसके बाद गोगूदा पर अधिकारमात्र को कुछ भी न मानने पर मुगल सम्राट् स्वयं प्रताप का दमन करने का निर्णय ले चुका था। अतः जो कार्य मानसिंह नहीं कर पाया उसे स्वयं पूरा करने के लिए उसने 11 अक्टूबर 1576 को अजमेर से गोगूदा के लिए प्रस्थान किया। पूरे मार्ग में अकबर की सुरक्षा के लिए सुदृढ़ प्रबन्ध किये गये। प्रतिदिन अकबर से पहले ही आगे की ओर सैनिकों की टुकड़ी भेज दी जाती थी, ताकि यदि मेवाड़ से सैनिक हमला करने के लिए कहीं छिपे हों, तो अकबर की भी रक्षा की जा सके। 13 अक्टूबर 1576 को वह गोगूदा पहुंच गया। अकबर के आने की सूचना मिलते ही महाराणा प्रताप पहाड़ों में चले गये। इस प्रकार गोगूदा पर पुनः मुगलों का अधिकार हो गया। गोगूदा को कुछ दिनों के लिए अकबर ने अपना मुख्यालय बना लिया।

महाराणा प्रताप का पता लगाने के लिए अकबर ने राजा भगवानदास, मानसिंह, कुतुबुद्दीन खां आदि को भेजा। यह दल सेना के साथ जहां भी गया, इसे महाराणा के हमलों से हानि उठानी पड़ी, अतः निराश होकर वापस लौट आया। इनकी इस असफलता से नाराज होकर अकबर ने इनकी ड्योढ़ी बन्द कर दी, जो क्षमा मांगने पर पुनः बहाल कर दी गई। अब अकबर स्वयं आगे आया। वह स्वयं हल्दीघाटी के उन स्थानों को देखना चाहता था, जहां युद्ध हुआ था। वह उन सभी स्थानों तक गया। प्रताप कहीं निकल न भागें इसके लिए उसने गुजरात के राजमार्ग पर सुरक्षा के प्रबन्ध कड़े कर दिए। इसके बाद वह पूर्व की ओर गया। उसने नाथद्वारा के पास मोही में कुछ कुशल सेनापतियों के अधीन तीन हजार सैनिकों की व्यवस्था कर दी। इसके बाद मदारिया में शाही थाना नियुक्त कर वह नवम्बर में उदयपुर पहुंचा। कुछ दिन उदयपुर

में रहने के बाद उसने पायन्दखान तथा जगन्नाथ को वहा का प्रशासक नियुक्त कर दिया तथा सैयद अब्दुल्ला खां और भगवानदास को उदयपुर के पहाड़ी क्षेत्रों का उत्तरदायित्व सौंपकर वह बांसवाड़ा तथा डूंगरपुर को चल पड़ा। दो महीनों तक पश्चिमी पर्वतमाला के उत्तर-पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी कोनों में उसने थानों की नियुक्ति की। प्रताप इसी पर्वतमाला में थे। अतः ऐसा करके वह उन्हें आत्मसमर्पण के लिए विवश कर देना चाहता था।

अकबर के सारे प्रयत्नों के बाद भी प्रताप पकड़ में नहीं आये। इसी समय उसे सूचना मिली कि प्रताप पुनः गोगूदा पर अधिकार करने की योजना बना रहे हैं। अतः भगवानदास, मानसिंह, मिर्जा खा, आदि पुनः गोगूदा भेज दिए गए, वहा सुरक्षा के कड़े प्रबन्ध कर यह दल लौट आया। इस प्रकार लगभग छः माह तक मेवाड़ में रहने पर और यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी अकबर महाराणा को नहीं पकड़ पाया। उसे पूरा विश्वास हो गया कि उन्हे पकड़ पाना कोई सरल कार्य नहीं है।

अकबर के नये गठबन्धन

इस अभियान में अकबर प्रताप को तो नहीं पकड़ पाया, हा कुछ राज-परिवारों के साथ उसके नये सम्बन्ध अवश्य बन गये। बासवाडे का रावल प्रतापसिंह तथा डूंगरपुर का रावल आसकर्ण दोनों महाराणा के मित्र थे। भगवानदास ने इन दोनों को अपनी ओर मिला लिया तथा अकबर की सेवा में उपस्थित किया। अकबर इससे अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने दोनों की मित्रता का सम्मान किया। डूंगरपुर की राजकुमारी से विवाह कर अकबर ने रावल आसकर्ण को अपना सम्बन्धी बना लिया। इसके बाद वह मालवा की ओर चला गया।

सिरोही और बूंदी इन दो राज्यों की सहानुभूति महाराणा के साथ थी। इन पर अकबर का पूर्ण प्रभाव नहीं था। इसी समय अकबर ने रायसिंह को सिरोही पर आक्रमण करने के लिए भेजा। सिरोही का शासक भागकर आबू गया। रायसिंह ने उसका वहा भी पीछा किया। विवश होकर राव सुरताण ने समर्पण कर दिया। रायसिंह उसे अकबर के सामने ले गया। अतः उसने अकबर

की अधीनता स्वीकार कर ली। इसी प्रकार सितम्बर 1576 में बूंदी पर अधिकार करने के लिए एक सेना सफदर खां के नेतृत्व में भेजी गई। इस सेना को सफलता न मिलने पर पुनः दूसरी सेना मार्च 1577 में जैनखां कोका के अधीन भेजी गई। इस युद्ध में बूंदी के गृह कलह के कारण राज्य की सेना का संचालन वहां का युवराज दुर्जनसिंह कर रहा था, जबकि उसके पिता सुरजन और भाई भोज मुगल सेना का साथ दे रहे थे। अन्त में बूंदी की पराजय हो गई। इससे मेवाड़ मुगल रक्षा पंक्ति से घिर गया। अकबर 12 मई 1577 को फतहपुर सीकरी लौट गया।

प्रताप द्वारा उदयपुर-गोगूंदा पर पुनः अधिकार

मेवाड़ पर मुगलों का एक आघात होता, तो महाराणा अवसर मिलते ही प्रतिघात करने से न चूकते। इस संघर्ष ने एक आंख मिचौली का जैसा रूप ले लिया था। अकबर के मेवाड़ से लौटते ही महाराणा फिर सक्रिय हो गये। वह अकबर द्वारा स्थापित थानों पर घात लगाकर हमला करने लगे। उन्होंने मेवाड़ से आगरा जाने वाले मार्ग पर भी अधिकार कर लिया। अतः इस मार्ग से मुगल सेना का आवागमन अवरुद्ध हो गया। उदयपुर तथा गोगूंदा में स्थापित मुगल थाने तुरन्त ही उठ गये और उन पर महाराणा का अधिकार हो गया। मोही पर हमले में वहां का थानेदार मारा गया। वीरविनोद के अनुसार महाराणा एक पल के लिए भी शान्त होकर नहीं बैठे। इस अवधि में उन्होंने अपनी युद्ध की पोशाक एक क्षण के लिए भी नहीं उतारी।

अकबर द्वारा शाहबाज खां को मेवाड़ भेजा जाना

प्रताप की इन गतिविधियों से मुगल सम्राट् अकबर क्षुब्ध हो उठा। वह उस समय मेरठ में था। उसने महाराणा को नष्ट करने के लिए पुनः एक विशेष सेना भेजी। इसका सेनापति शाहबाज खां था। उसमें राजा भगवानदास, मानसिंह, सैयद हाशिम, पायन्दा खां मुगल, सैयद कासिम, सैयद राजू, उलग असद तुर्कमान, गाजी खां बदख्शी, शरीफ खां अतगह, मिर्जा खां खानखाना,

गजरा चौहान आदि बड़े-बड़े सैन्य अधिकारी भी भेजे गये। 15 अक्तूबर 1577 को यह सेना अपने लक्ष्य पर चल पड़ी और मेवाड़ पहुंच गई। अनेक प्रयत्न करने पर भी इसे कोई सफलता नहीं मिली। अतः शाहबाज खां ने अकबर से अतिरिक्त सेना की मांग की। अकबर ने शेख इब्राहिम फतेहपुरी के अधीन एक अन्य सेना शीघ्र ही भेज दी।

दोनों सेनाओं को लेकर शाहबाज खां आगे बढ़ा। वह अपने मार्ग में कोई कमी नहीं रहने देना चाहता था। उसे सन्देह हो गया कि कहीं राजपूत होने के कारण राजा मानसिंह तथा भगवानदास धोखे से प्रताप की सहायता न करें। अतः उसने इन दोनों को इस अभियान से अलग कर दिया। यही नहीं, उस सेना में एक भी हिन्दू अधिकारी नहीं रहने दिया गया। शाहबाज खां का यह कार्य अकबर की आज्ञाओं का स्पष्ट उल्लंघन था किन्तु फिर भी अकबर ने उससे कुछ भी नहीं कहा।

पहाड़ियों की शरण में

मेवाड़ में सभी सामग्री पूर्ण सुरक्षा के साथ अजमेर की ओर से मंगाई जाती थी। शाही सेना के किसी थानेदार ने एक किसान को कोई विशेष प्रकार की सब्जी बोने के लिए बाध्य कर दिया था। प्रताप को इसकी सूचना मिल गई। एक रात्रि प्रताप ने शाही सेना के शिविर मे जाकर उस किसान का सिर काट डाला।

टॉड ने एक घटना का उल्लेख किया है, जो प्रताप की इसी कठोर आज्ञा की ओर सकेत करती है। प्रताप द्वारा जिन स्थानों को छोड़कर वीरान कर दिया गया था, वहा एक दिन प्रताप के सैनिकों ने देखा कि एक गड़रिया निश्चिन्त होकर भेड़ें चरा रहा है। सैनिकों ने इसे राजाज्ञा का उल्लघन समझा और उस गडरिये को मार डाला तथा उसके शव को पेड़ पर लटका दिया।

इस बीच मुगल सेना प्रताप के पीछे पडी रही, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली।

कुम्भलगढ़ पर मुगल अधिकार

भगवानदास और मानसिह को वापस कर देने के बाद शाहबाज खां आगे बढ़ा। कुम्भलगढ दुर्ग पहाड़ियो से पूरी तरह छिपा हुआ था। जो दूर से नहीं दिखाई देता था। इस दुर्ग की पहाड़ियो के नीचे केलवाडा गाव था। शाही सेना ने इसी गाव मे अपना शिविर लगाया। एक दिन मेवाड़ के सैनिकों ने रात मे छापा मारकर शाही सेना के चार हाथी छीन लिए और महाराणा को भेंट कर दिए। शाही सेना ने केलवाडा तथा नाडोल की ओर से नाकेबन्दी कर दी और कुम्भलगढ़ मे खाद्य और युद्ध की सामग्री पहुचना कठिन हो गया। इस परिस्थिति को देखकर मेवाड के सामन्तों ने महाराणा से किला छोड़कर सुरक्षित स्थान चले जाने का अनुरोध किया। अत्यधिक आग्रह किये जाने पर महाराणा किले से निकल गये। वहा से निकलने के बाद वह कुछ दिन राणपुर मे ठहरे और इसके बाद ईडर की ओर चूलिया गाव पहुंचे। मेवाड़ के इतिहास ने दूसरी ही पीढ़ी मे एक बार फिर अपनी (इतिहास की) पुनरावृत्ति कर दी। एक बार महाराणा उदयसिंह को सन् 1567 मे राजधानी छोड़कर पश्चिमी पहाड़ियों की शरण लेनी पड़ी थी और चित्तौड़ दुर्ग का रक्षा भार जयसिंह और पत्ता

को घेर लिया गया था। इस बार महाराणा को वनों की शरण लेनी पड़ी। किले की रक्षा के लिए राव अक्षयराज के पुत्र भाण को नियुक्त किया गया।

एक किंवदन्ती है कि कुम्भलगढ़ का मार्ग शाहबाज खां को ज्ञात नहीं था। इसके लिए उसने महाराणा की एक मालिन को किसी प्रकार अपने वश में कर लिया। मालिन मार्ग पर फूल बिखेरती गई। उन फूलों को देखकर मुगल सेना केलवाड़ा तक पहुंच गई। मालिन के इस द्रोह का ज्ञान होने पर एक भील ने उसे मार डाला।

केलवाड़ा से कुम्भलगढ़ केवल तीन मील की दूरी पर स्थित है। अत केलवाड़ा पर अधिकार कर लेने के बाद शाहबाज खां कुम्भलगढ़ पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। कुम्भलगढ़ दुर्ग का निर्माण सन् 1452 ई० में हुआ था। तब से इस पर कभी भी शत्रुओं का अधिकार नहीं हुआ था। महाराणा का अमात्य भामाशाह दुर्ग से समस्त कोष को लेकर मालवा में रामपुरा चला गया। वहां के राव ने उसे आश्रय दिया तथा पूरी सुरक्षा के साथ रखा।

केलवाड़ा से शाहबाज खां के नेतृत्व में मुगल सेना ने कुम्भलगढ़ पर आक्रमण कर दिया। किले में स्थित राजपूतों ने इन आक्रमणों का वीरता के साथ सामना किया। दुर्भाग्य से एक दिन किले के अन्दर रखी एक तोप फट पड़ी, जिससे किले में रखी युद्ध की बहुत सारी सामग्री जल गई। राजपूतों के लिए शत्रुओं का सामना करना कठिन हो गया। विवश होकर उन्होंने किले का दरवाजा खोल दिया और शत्रु सेना पर टूट पड़े। घमासान युद्ध के बाद कुम्भलगढ़ पर मुगलों का अधिकार हो गया। यह घटना 3 अप्रेल 1578 को घटी। यहां प्रताप को न पाकर शाहबाज खां को बड़ी निराशा हुई। वहीं उसे सूचना मिली कि महाराणा रामपुरा के किले में चले गए हैं इसके बाद नई सूचना मिली कि रामपुरा के बाद वह बासवाड़ा चले गए हैं।

इन सूचनाओं के बाद शाहबाज खां ने कुम्भलगढ़ में सुरक्षा प्रबन्ध तथा अन्य व्यवस्थाएं करके उसका भार गाजीखान बादख्शी को सौंप दिया तथा स्वयं वहां से महाराणा को पकड़ने के लिए चल पड़ा।

उदयपुर पर मुगलों का अधिकार

कुंभलगढ़ पर अधिकार करने के दूसरे ही दिन शाहबाज खां गोगूंदा की ओर चल पड़ा। वह महाराणा को किसी भी मूल्य पर पकड़ना चाहता था। इसके ही दिन बाद उसने गोगूंदा पर अधिकार कर लिया। गोगूंदा की व्यवस्था कर वह आगे की तरफ उदयपुर की ओर बढ़ा तथा रात्रि में उदयपुर पर भी अधिकार कर लिया। इन तीनों ही स्थानों पर उसने भारी लूटपाट की। वह जिधर से भी निकलता उन स्थानों को लूटने के साथ ही नष्ट कर डालता। इससे उन लोगों को भारी हानि हुई। इसके बाद वह प्रताप को पकड़ने के लिए पहाड़ों पर भटकता रहा, किन्तु उसे असफलता ही हाथ लगी। अन्त में उसने महाराणा का पीछा करना छोड़ दिया।

शाहबाज खां तीन महीनों तक पहाड़ियों में इधर से उधर घूमता रहा। अब उसे विश्वास हो गया था कि वह प्रताप को नहीं पकड़ सकता। अतः विभिन्न स्थानों पर पचास मुगल थानों की स्थापना कर वह अकबर के पास वापस चला गया।

शाहबाज खां ने जिस तत्परता से कुम्भलगढ़ के बाद गोगूंदा और उदयपुर को अधिकार में किया वह एक आश्चर्यजनक बात है। उसे जहां भी प्रताप के होने की सूचना मिलती वह वहीं पहुंच जाता। कुम्भलगढ़ में उसे गलत सूचना मिली, किन्तु वह जिस उत्साह से कार्य कर रहा था, वह प्रशंसनीय ही कहा जाएगा, इस विषय में श्री राजेन्द्र बीड़ा ने लिखा है—

"कुम्भलगढ़ से शाहबाज खान जिस तेजी से गोगूंदा और उदयपुर पहुंचा, वह कम आश्चर्यजनक नहीं है। कुम्भलगढ़ से गोगूंदा और उदयपुर पहुंचकर उसने नेपोलियन को भी मात कर दिया। रूस के युद्ध के बाद नेपोलियन जिस तत्परता से फ्रान्स पहुंचा था, उसी तत्परता से शाहबाज खान गोगूंदा और उदयपुर पहुंचा था। शाहबाज खान को क्या पता था कि प्रताप के बारे में उसे गलत सूचना मिली है। प्रताप कुम्भलगढ़ से सादड़ी की ओर ही जा सकता था। वह आरोठ की घाटी और गोगूंदा किसी भी हालत में नहीं जा सकता था। उधर मुगल सेना पहले से ही तैनात थी।"

भामाशाह द्वारा आर्थिक सहायता

मेवाड़ के महाराणा इन समय वन्य जीवन जी रहे थे। मेवाड़ पर प्रायः मुगलों का अधिकार हो चुका था और शेष भाग वीरान हो चुका था। महाराणा निरन्तर संघर्ष कर रहे थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही चिन्तनीय हो गई थी। उनके इस संघर्षमय जीवन में उनके विश्वासपात्र सहयोगियों तथा सामन्तों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा। शाहबाज खां के मेवाड़ से जाने के तुरन्त बाद ही प्रताप के मन्त्री भामाशाह तथा उसके भाई ताराचन्द ने मालवा से लूटकर लाई हुई 20000 स्वर्ण मुद्राएं (अशर्फियां) तथा 2500000 रुपये की धनराशि उन्हें समर्पित की। उस समय महाराणा चूलिया गांव में थे। अबतक रामा महासहाणी महाराणा का प्रधानमन्त्री था। भामाशाह की इस अपूर्व राजभक्ति तथा त्याग से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे अपना नया प्रधानमन्त्री बनाया।

ऐसे समय में इस प्रकार आर्थिक सहायता का मिलना किसी वरदान से कम नहीं था। इससे महाराणा को सेना का संगठन तथा शक्ति संचय करने में बड़ी सहायता मिली।

भामाशाह को मालवा में रामपुरा के राव दुर्गा ने अपने संरक्षण में रखा था, अतः भामाशाह द्वारा मालवा लूटकर धनसंग्रह करने की बात तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती। कदाचित् यह धनराशि मालवा राज्य के बाहर के गांवों से लूटी गई हो। इस विषय में श्री राजेन्द्र बीड़ा लिखते हैं -

"इतिहासकारों का कहना है कि भामाशाह कुम्भलगढ़ से मालवा चला गया था, जहां रामपुरा के राव दुर्गा ने उसे संरक्षण दिया था। मालवा के बीच के गांवों को लूटकर भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द ने 2500000 रु० और 20000 मोहरें इकट्ठी की थी। मालवा उसके समय [illegible] के बीच [illegible] रहते थे (उनको इन दोनों भाइयों ने लूटकर [illegible] इकट्ठी की थी।) यही पैसा उन्होंने प्रताप (को अशर्फियां) को [illegible] अर्पित किया था। इस तथ्य को लेकर भामाशाह के त्याग और देशभक्ति की [illegible] की जाती है। इस भेंट के बाद वह [illegible] का [illegible] नियुक्त कर दिया गया। [illegible] ने कई आपत्तियां [illegible] है। [illegible]

के बाद सेना कुम्भलगढ की ओर बढ चली और उसे भी अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद महाराणा की सेना जावर, छप्पन और बागड की पहाडियों पर विजय प्राप्त करती हुई चावण्ड पहुची। चावण्ड को अपने अधिकार में लेने के बाद महाराणा ने इस स्थान को कुछ दिन के लिए अपना केन्द्र बनाया। यहा रहकर उन्होने चामुण्डा माता के प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। इस प्रकार शीघ्र ही एक बार फिर मेवाड के एक बडे भू-भाग पर महाराणा का अधिकार हो गया।

इससे मेवाड के सैनिको के उत्साह मे वृद्धि हुई और वे मालवा तक मुगलो के सैनिक शिविरो पर हमले करने लगे। भामाशाह का भाई ताराचन्द अभी तक मालवा मे ही था। जिस समय शाहबाज खा लौटकर पंजाब जा रहा था, उसकी बस्सी मे ताराचन्द से मुठभेड हो गई, जिसमे ताराचन्द की हार हुई। वह घायल हो गया था। घायल अवस्था मे राव सैनदास ने उसका उपचार किया तथा सभी प्रकार से सहायता दी। स्वस्थ हो जाने के बाद ताराचन्द को साथ सैनदास महाराणा के पास चावण्ड आ गया।

इससे पूर्व डूगरपुर के राव आसकरण तथा बांसवाडा के राव प्रताप ने अकबर से मित्रता कर ली थी। इसके पीछे भगवानदास की प्रेरणा रही थी, इसका पूर्वोल्लेख किया जा चुका है। महाराणा प्रताप ने इन्हें अपने अधीन करने के लिए एक सेना भेजी। इस सेना का नेतृत्व रावतमान ने किया। रावतमान को इस अभियान मे सहायता देने के लिए जोधपुर का राव चन्द्रसेन भी आ पहुचा। सोम नदी के तट पर रावतमान की सेना का बासवाडा तथा डूगरपुर की सेना से सामना हुआ। इस युद्ध मे रावतमान का पुत्र वीरगति को प्राप्त हो गया, किन्तु युद्ध रावतमान ने जीत लिया। और ये दोनो राज्य पुनः प्रताप के अधीन हो गए।

की दरगाह अजमेर पहुंचा। वहां उसने पुनः मन्नत मांगी और फिर सांभर पहुंचा। वहां से उसने तीसरी बार शाहबाज खां को मेवाड़ जाने का आदेश दिया। 9 नवम्बर 1579 को शाहबाज खां मेवाड़ पर अपने तृतीय अभियान पर चल पड़ा। मेवाड़ पहुंच कर उसने प्रताप के विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति लगा दी। प्रताप पुनः पर्वतों पर चले गए। उसने समस्त मध्य मेवाड़ में प्रताप का प्रभाव समाप्त कर देने में सफलता प्राप्त की, परन्तु वह प्रताप को प्राप्त नहीं कर सका।

शाहबाज खां पहाड़ों, वनों आदि सभी जगह उन्हें पकड़ने के लिए घूमता रहा, किन्तु प्रताप आबू से बारह मील दूर सोढ़ा के पहाड़ों में चले गए। वहां वह लोयाना के राव धुला के अतिथि बनकर रहे। राव धुला ने उनको हर प्रकार की सुविधा तथा सम्मान दिया। इसके साथ ही उनके साथ अपनी पुत्री का विवाह भी कर दिया। महाराणा ने राव धुला को राणा की उपाधि दी।

सम्राट अकबर ने शाहबाज खां को मेवाड़ भेजते समय अत्यन्त कठोर आदेश दिए थे। यद्यपि शाहबाज खां को महाराणा का प्रभाव समाप्त करने में सफलता मिली थी, फिर भी अकबर के कड़े आदेशों का पालन करने में वह असमर्थ रहा। अतः अकबर उससे नाराज हो गया और सन् 1580 के मध्य में वह वापस बुला लिया गया।

शाहबाज खां के वापस चले जाने के बाद अकबर ने रुस्तम खां को अजमेर का सूबेदार बनाकर भेजा। वह प्रताप के विरुद्ध किसी अभियान पर जाता, इससे पहले ही शेरपुरा के कुछ कछवाहों ने विद्रोह कर दिया। वह इस विद्रोह को दबाने के लिए पहुंचा, किन्तु मारा गया। उसका सूबेदार के रूप में कार्यकाल केवल चार महीने ही रहा।

खानखाना का मेवाड़ अभियान

जून के मध्य में रुस्तम खां की मृत्यु के बाद 16 जून 1580 को अकबर ने अजमेर के सूबेदार के पद पर अब्दुर्रहीम खानखाना की नियुक्ति की। खानखाना के मेवाड़ की लड़ाइयों का अच्छा अनुभव था। वह मेवाड़ के अभियानों में सम्राट् अकबर तथा शाहबाज खां के साथ काम कर चुका था।

अतः उससे अपेक्षा की गई कि वह मेवाड़ समस्या का समाधान कर पाने में समर्थ होगा।

खानखाना प्रताप का दमन करने में जुट गया। उसने अपना परिवार शेरपुरा में छोड़ दिया और स्वयं प्रताप का पीछा करने में लग गया। उसका समाचार पाते ही महाराणा ढोलान की ओर चले गए। प्रताप से खानखाना का ध्यान बटाने के लिए अमरसिंह के आधीन एक सैनिक टुकडी ने शेरपुरा पर आक्रमण कर दिया। इस हमले में अमरसिंह ने खानखाना के परिवार को बन्दी बना लिया। यह सूचना महाराणा के पास भेज दी गई। सूचना मिलते ही उन्होंने अमरसिंह को सूचित किया कि खानखाना के परिवार को तुरन्त सम्मान के साथ मुक्त कर दिया जाए तथा महिलाओं के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न होने पाए। महाराणा के इस कठोर आदेश का पूर्ण पालन हुआ. बन्दी बनाया गया खानखाना का पूरा परिवार सम्मान के साथ खानखाना के पास पहुंचा दिया गया।

मुसलमानों में ऐसे व्यवहार की अपेक्षा कभी नहीं की जा सकती थी। महाराणा के इस उदार मानवतापूर्ण व्यवहार से खानखाना का कवि हृदय अभिभूत हो उठा। कहा जाता है कि महाराणा के प्रति उनकी कृतज्ञता निम्न दोहे में साकार हो उठी

> ध्रम रहसी रहसी धरा,
> खस जासी खुरसाण।
> अमर विसम्भर उपरों,
> राखो नहचो राण।

खानखाना का भावुक हृदय यद्यपि महाराणा के प्रति श्रद्धा से भर हो गया था, फिर भी सम्राट् की आज्ञा का पालन करना उसका कर्तव्य था। अतः वह मेवाड़ के मुगल शिविर प्रदेशों को फिर वापस लेने में सफल हो गया।

या मुस्लिम इतिहासकार प्रतार द्वारा क्षमायाचना के पत्र का उल्लेख नहीं करता। यदि ऐसा होता, तो मुस्लिम इतिहासकार उसके सम्बन्ध में अवश्य लिखते. क्योंकि ऐसी घटना की उपेक्षा किया जाना सम्भव नहीं था, यदि उसमें वास्तविकता होती।"

एक अन्य विवादास्पद प्रसंग

उपर्युक्त पत्र के समान ही एक अन्य प्रसंग प्रताप की विपन्न अवस्था के सम्बन्ध में है। इस विषय में कहा जाता है कि 1579 ई० में जब शाहबाज खां ने मेवाड़ पर चढ़ाई की, तो महाराणा को यायावरों की तरह जंगलों और पहाड़ों में भटकना पड़ा। इस समय प्रताप की आर्थिक अवस्था बहुत दयनीय हो गई थी। उनके सभी सहयोगी वनवासी थे। उनके पास खाने के लिए कुछ भी नहीं रह गया था। उन्हें और उनके परिवार के अन्य सदस्यों को घास की रोटियां खानी पड़ीं। एक बार उनकी पुत्री के हाथ में रोटी का एक टुकड़ा था। एक वन बिलाव उस टुकड़े को छीनकर ले भागा। वह बिलखती रह गई। इस घटना को देखकर प्रताप विचलित हो उठे। उनकी आंखों से आंसू आ गये। इससे प्रताप का संकल्प डगमगा गया और वह अकबर की अधीनता स्वीकार करने को सहमत हो गये।

इस घटना का समर्थन भी किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ या मेवाड़ राजवंश के विषय में लिखे गए काव्य ग्रन्थ से नहीं होता। केवल कर्नल टॉड ने इसका उल्लेख किया है, किन्तु टॉड को इसका स्रोत कहां से मिला, उसका उसने कोई उल्लेख नहीं किया है। सर्वप्रथम तो प्रताप का पहाड़ी क्षेत्रों में सदा अधिकार बना रहा। इन क्षेत्रों के बीच-बीच में उपजाऊ भूमि भी है। साथ ही प्रताप की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि आस-पास के ग्रामवासी उनकी सहायता करते थे। उनकी आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। वह अपने पूर्वजों द्वारा संचित कोष को भी अपने साथ ले गये थे। यदि वह इस प्रकार की दयनीय अवस्था में होते, तो अनवरत रूप से अवसर मिलते ही मुगलों का सामना कैसे करते रहते और सबसे बड़ी बात यह कि प्रताप की कोई पुत्री थी ही नहीं। इस कथा की निरर्थकता को सिद्ध करते हुए

ने बाद वाले बिठाकर लौट गया। महाराणा इन भागों पर बराबर हमला कर उन्हें उठाते रहे। कर्नल टॉड ने महाराणा की स्थिति का जैसा चित्र खींचा है, यदि वह सच होता तो अबुल फजल जैसा लेखक, जो पग-पग पर बादशाह की खुशामद-पूर्ण प्रशंसा करता है और थोड़ी-सी बात को बढ़ा-चढ़ाकर लिखता है, इस बात को नई या बढ़ा चढ़ाकर लिखता। परन्तु अकबरनामा या फारसी तवारीखों में कहीं भी वर्णन नहीं है कि कष्टों और विपत्तियों को न सह सकने के कारण राणा ने अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए उसे पत्र लिखा। यह सच है कि उदयपुर अथवा कुंभलगढ़ के राजमहलों जैसा आराम वहां नहीं था और उन्हें गढ़न की चिन्ता सदा लगी रहती थी।"

प्रताप को कभी आर्थिक संकटों का सामना नहीं करना पड़ा। उनके पूर्वजों राणा कुम्भा तथा राणा सांगा ने अतुल सम्पत्ति अर्जित की थी। यह समस्त सम्पत्ति मेवाड़ पर बहादुरशाह के पहले आक्रमण से पूर्व ही चित्तौड़ से हटा ली गई थी। अतः बहादुरशाह अथवा अकबर कोई भी आक्रान्ता इसे नहीं प्राप्त कर सके थे। यद्यपि उदयसिंह अथवा प्रताप को सम्पत्ति अर्जित करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था किन्तु पूर्वजों के अर्जित इस कोष को उन्होंने सदा सुरक्षित रखा। प्रताप तथा उनके पुत्र अमरसिंह के मुगलों के साथ आक्रमणों के समय इस कोष को भामाशाह के नियन्त्रण में गुप्त स्थान पर रखा जाता था। वह उसका पूर्ण विवरण अपनी बही में रखता था तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें से धन निकालकर व्यय करता था। अपनी मृत्यु के समय उसने यह बही अपनी पत्नी को दे दी थी और इसे अमरसिंह के पास पहुंचा देने का अनुरोध किया था।

बाद में अमरसिंह ने जहांगीर से सन्धि कर ली थी। सन्धि के समय अमरसिंह ने शहजादा खुर्रम (बाद में शाहजहां) को एक लाल भेंट किया था, जिसका तत्कालीन मूल्य साठ हजार रुपये था। यह लाल राठौर शासक राव मालदेव के पास था। उसके पुत्र चन्द्रसेन ने इसे संकट के समय उदयसिंह को बेच दिया था। इसके अतिरिक्त जब शहजादा खुर्रम दक्षिण जाते समय उदयपुर में रुका, तो उसे अमरसिंह ने पांच हाथी, सत्ताइस घोड़े तथा बहुमूल्य रत्नों और रत्न जड़े आभूषणों से भरा एक थाल भेंट किया था। हां यह बात अलग है कि खुर्रम ने तीन घोड़ों के अतिरिक्त वस्तुएं अमरसिंह को वापस कर दी।

के पीछे रह गया और अभी है।

एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार गाडोलिया लोहार भी महाराणा की प्रति मे पीछे आये है। ये लोग अपने परिवारो के साथ बैलगाडियों मे सामान ले एक स्थान से दूसरे स्थान पर डेरा लगाते हुए घूमते रहते हैं। बैलगाडी ने ही भोजन का प्रबन्ध, चाकू, छुरिया आदि वस्तुए बनाते इनके परिवा राजस्थान, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश आदि मे सडकों के किनारे डेरा जमाये देखे जा सकते हैं। इनके विषय में माना जाता है कि प्रताप के समय मे जब चित्तौड पर मुगलों का आक्रमण हुआ और चित्तौड़ खाली करना पड़ा, तो ये लोग महाराणा की विजय तक घूमते रहने के लिए घरो मे निकल पड़े और तब से भटकते रहते हैं। वस्तुतः इनका महाराणा प्रताप से कोई सम्बन्ध नही है। किसी भी ऐतिहासिक पुस्तक मे इसका प्रमाण नही मिलता। उस समय सभी को चित्तौड छोड़ना पड़ा था, किन्तु किसी भी अन्य समुदाय ने ऐसा घुमन्तू जीवन नही अपनाया।

हल्दीघाटी युद्ध के बाद महाराणा प्रताप का अधिकाश समय पहाड़ो में ही व्यतीत हुआ। उनका यही जीवन उनके भव्यतम इतिहास का चरम बिन्दु है। यहीं उनके अपूर्व देशप्रेम, कुशल रणनीति, अद्भुत मनोबल तथा उत्साह के दर्शन होते है। हल्दीघाटी की पराजय को प्रताप ने कभी पराजय के रूप मे स्वीकार नहीं किया। वस्तुतः इसी पराजय के बाद उनकी युद्धनीति का एक नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है। गोगूदा मे बार-बार मुगलों पर आक्रमण करके वह मुगलो को दुर्गो के आस-पास उलझाकर मुगलों की शक्ति को क्षीण कर उनके मनोबल को नष्ट कर देना चाहते थे। वह केवल रोक-थाम के ही पक्ष मे नही थे। उन्होंने कुम्भलगढ़ के पास से सहाड़ा तक तथा गोडवाड़ से आसींद तक समस्त पर्वतीय प्रदेशो मे परम विश्वस्त और वीर भीलो को लगाया हुआ था, जो सदा तत्परता के साथ अपना कर्तव्य निर्वाह करते थे। उन्ही के सहयोग से शत्रु अन्दर प्रवेश नही कर सकता था और यदि सेना सहित शत्रु प्रवेश का विचार करता भी तो इसकी सूचना महाराणा को मिल जाती और वह वहा से अन्यत्र चले जाते।

अपनी मातृभूमि के प्रति इसी कर्तव्य के निर्वाह के कारण महाराणा ने अपने सुखमय जीवन को त्याग दिया। या यों कहा जा सकता है कि वन्य जीवन

की कठिनाइयों को ही उन्होंने अपने जीवन का अंग बना लिया था। इसे कायरता नहीं, वरन् उनकी कुशल राजनीति का ही परिचायक कहा जायगा। उनकी इस नीति में मुगलों से सीधी टक्कर का अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता था। यही कारण था कि परम शक्तिशाली मुगल सम्राट् मेवाड़ को स्थायी रूप से अपने प्रभुत्व में लाने में सफल नहीं हुआ। इसके पीछे मेवाड़ के लोगों के हृदय में महाराणा के प्रति अगाध श्रद्धा भी एक बहुत बड़ा कारण थी। इस वन्य जीवन में उन्होंने प्रजा से अपने सम्बन्ध आत्मीयतापूर्ण बना लिए थे। उनके प्रबल त्याग, कठोर अनुशासन तथा कष्टपूर्ण जीवन का प्रजा पर प्रेरणाप्रद प्रभाव पड़ता था, अतः जनता की उनके लिए एक सहज भक्ति उत्पन्न हो गई थी। जनता का अनुराग ही किसी शासक की स्थिरता का कारण होता है, इस तथ्य से महाराणा भली-भांति परिचित थे। इसीलिए उनकी प्रजा उनके एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते समय मुगल दण्ड की परवाह किए बिना उनके ठहरने की सहर्ष व्यवस्था कर देती थी।

सन् 1576 से 1685 के उत्तरार्द्ध तक महाराणा पर्वतों में एक से दूसरे स्थान पर भटकते रहे किन्तु फिर भी उन्होंने मुगल सम्राट् के समक्ष पराजय नहीं मानी। अन्त में उनके दिन फिरे, मुगल सम्राट् का मेवाड़ अभियान क्षीण होने लगा। अब महाराणा पुनः मेवाड़ को पूर्णतया मुगल प्रभाव से मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील हो गये।

उदयपुर काफी दूरी [illegible] रहे थे, किन्तु अनुकूल स्थिति होते ही इसका वास्तविक प्रभाव भी दिखने लगता था। ईडर राज्य का शासक राव नारायणदास प्रताप का श्वसुर [illegible] था। इस प्रकार प्रताप ने मेवाड़ के लिए एक मजबूत [illegible] का निर्माण कर लिया था

राठौरों पर प्रभुसत्ता

प्रताप के विरुद्ध मुगलों का अभियान शीघ्रगति से चल रहा था जो प्रताप अवसर मिलते ही पुनः मुगलों को खदेड़ देते थे। प्रताप को इन युद्धों में उलझा [illegible] विद्रोही [illegible] अपनी शक्ति बढ़ाते जा रहे थे [illegible] राठौरों में इस प्रकार का साहस [illegible] था। उन्होंने मगरा जिले के दक्षिण-पश्चिमी भाग में अपनी शक्ति बढ़ाना आरम्भ कर दिया। महाराणा के लिए यह एक नई स्थिति थी। इसी समय जगन्नाथ कछवाहा भी मेवाड़ अभियान पर था। एक ओर वह कछवाहा के अभियान का सामना कर रहे थे, दूसरी ओर राठौर विद्रोह पर उतर रहे थे। महाराणा ने राठौरों का दमन करना आवश्यक समझा। अतः 1585 ई० में वह मगरा के दक्षिण पश्चिम की तरफ दिये। यहां उन्होंने राठौरों का दमन किया। उनका नेता लूणा चावण्डिया पराजित हो गया तथा यहां राणा की सत्ता स्थापित हो गई। सराड़ा के निकट पुरपुष्ट गांव में एक शिलालेख है, जिसमें इस घटना का उल्लेख किया गया है।

अधिकांश मेवाड़ पर अधिकार

अकबर के अन्य स्थानों पर व्यस्त होते ही मेवाड़ पर मुगलों का दबाव कम हो गया था। अतः महाराणा ने 1585 ई० में मेवाड़ मुक्ति के प्रयत्न तेज कर दिए। अमरसिंह के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना अपने लक्ष्य पर निकल पड़ी। इस सेना ने मुगल चौकियों पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। मुगल सेना भागने लगी और शीघ्र ही उदयपुर, मोही, गोगुंदा, माण्डल, पिण्डवाड़ा आदि 36 महत्त्वपूर्ण स्थानों पर महाराणा का आधिपत्य स्थापित हो गया। एक वर्ष के

तथा युद्धों में अपने प्राणों से हाथ धोने वाले वीरों के उत्तराधिकारियों को अनेक प्रकार से पुरस्कार दिये गये। मेवाड़ के कई भाग वीरान हो गये थे। उन्हें फिर से बसाने की घोषणा की गई।

नई राजधानी चावण्ड

इसी समय महाराणा प्रताप ने अपने राज्य की नई राजधानी चावण्ड का निर्माण कराया। यह क्षेत्र प्रारम्भ में शासक चावण्डिया से छीना गया था। इसी के चावण्ड गांव को राजधानी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। यहां चारों ओर घने वन तथा पर्वत मालाएं फैली हुई थी। अतः इसे सुरक्षा की दृष्टि से राजधानी के लिए सर्वथा उपयुक्त समझा गया। चावण्ड के समीप कृषि योग्य भूमि भी थी। इस दृष्टि से यह स्थान सुरक्षा के साथ ही शान्तिकाल के लिए भी अनुकूल था। इसके साथ ही यह मेवाड़ के मित्र राज्यों के समीप तथा मुगलों की पहुंच से दूर पड़ता था। निश्चय ही इस सुरक्षित स्थान को राज्य की राजधानी बनाना महाराणा की दूरदर्शिता का परिचायक है।

चावण्ड में नवीन निर्माण कार्य किया गया। सुन्दर भव्य राजमहल बने। इन महलों की निर्माण शैली राणा कुम्भा तथा राणा उदयसिंह की निर्माण शैली से साम्य रखती है। इनके निर्माण में आकार प्रकार और समय की आवश्यकता पर पूरा ध्यान दिया गया। आज भी इनके भग्न अवशेषों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि इनके निर्माण में युद्ध काल की भयावहता का स्पष्ट प्रभाव है। प्रत्येक स्थान पर सुरक्षा, सुदृढ़ता आदि का समुचित ध्यान रखा गया है।

राजप्रासाद के पास ही सामन्तों के आवास भी बनाये गये। इनके खण्डहरों से स्पष्ट हो जाता है कि इनके कमरे राजप्रासाद की तुलना में कुछ छोटे थे। इनमें कुछ छोटे कमरे, चबूतरे तथा खुली घुड़साल होती थी। मकानों की छतों को घास और केलू से ढका जाता था। जनसाधारण के लिए कच्चे मकान बनाये गये। राजप्रासाद के ठीक सामने चामुण्डा देवी का मन्दिर है। चावण्ड की स्थापत्य कला के विषय में डॉ गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है—

"ये महल अपनी मजबूती की दृष्टि से विलक्षण हैं। इनकी निर्माण शैली में उदयसिंह तथा कुम्भा के काल की निर्माण शैली की झलक है। यहां के भग्ना-

राज्य में सभी लोग सुख से रहने लगे। शीघ्र ही राज्य में युद्ध की विभीषिका का नाम भी नहीं रहा। अमरसिंह के समय में लिखे गये एक काव्य ग्रन्थ में महाराणा के शासन की सुव्यवस्था, प्रजा की सुख-शान्ति तथा सम्पन्नता का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है—

'प्रताप ने उस समय तक अपने राज्य में सुख-शान्ति का ऐसा प्रसार कर दिया था कि स्त्रियों और बच्चों को भी किसी का भय नहीं था। सभी प्रजा का चरित्र ऊंचा था और नैतिकता पर सभी की आस्था थी। अतः राज्य द्वारा किसी को दण्ड दिये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। महाराणा प्रताप ने प्रजा में प्रत्येक की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया। भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। राज्य में अभाव जैसी कोई चीज न रही। सभी को घी, दूध, दही, फल तथा अन्य खाद्य सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। इस शान्तिकाल में मेवाड़ के कई नगर पुनः बसे, जिनमें समृद्ध और सम्पन्न प्रजा निवास करती थी।

महाप्रयाण

महाराणा प्रताप जब तक जीवित रहे, तब तक वे मुगलों से जूझते रहे। मेवाड़ पर उनके मुगलों से इस युद्ध का अन्त सन् 1585 में हुआ। इसके बाद महाराणा अपने राज्य की सुख-शान्ति में लग गए थे किन्तु दुर्भाग्य से ग्यारह वर्षों के बाद ही 19 जनवरी 1597 को उनका देहान्त हो गया।

कर्नल टॉड के अनुसार मृत्यु के समय प्राण निकलते समय महाराणा को असीम कष्ट हो रहा था, किन्तु प्राण नहीं निकल पा रहे थे। वस्तुतः उन्हें उस समय भी मेवाड़ की रक्षा की चिन्ता लगी हुई थी। जब उनके सामन्तों ने उन्हें मेवाड़ की रक्षा का आश्वासन दिया तब महाराणा ने प्राण त्याग दिए।

उनकी मृत्यु किस रोग से हुई इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस विषय में कहा जाता है कि एक दिन शिकार करते समय जब वे तीर चला रहे थे, तो उन्होंने उसे इतनी ज़ोर से खींचा कि राजधानी में उनके पेट में चोट लग गई। निरन्तर संघर्षमय जीवन के कठिन परिश्रम से उनका शरीर पहले ही दुर्बल हो गया था, अतः इस चोट के कारण वे बीमार पड़ गए और कुछ ही दिनों में उनकी मृत्यु हो गई। [illegible]

ने अकबरनामा में लिखा है कि अमरसिंह ने महाराणा को विष दे दिया। जिससे उनकी मृत्यु हो गई। अबुलफजल के इस वर्णन का अन्य किसी समकालीन इतिहासकार ने उल्लेख नहीं किया है, अतः उसका यह निराधार माना जाता है।

प्रताप की मृत्यु चावण्ड में ही हुई न कि पीछोले की पाल पर, जैसा टॉड ने लिखा है। मृत्यु के बाद बण्डोली गाव में एक झरने के तट पर उनका अन्तिम संस्कार हुआ। इस स्थान पर राजपरिवार का श्मशान है। बण्डोली चावण्ड से प्रायः डेढ़ मील की दूरी पर है। वही पर उनके स्मारक के रूप में एक छोटी सी समाधि है, जिस पर आठ खम्भों वाली एक छतरी है। इस छतरी पर बाद में लगभग सन् 1601 में किसी ने उनकी बहिन के विषय में एक पाषाण लेख लगा दिया, जिससे प्रायः लोगों को भ्रम हो जाता है कि यह महाराणा की नहीं, अपितु उनकी बहिन की समाधि है, जो सत्य नहीं।

महाराणा की मृत्यु पर अकबर की प्रतिक्रिया

अकबर महाराणा प्रताप का सबसे बड़ा शत्रु था, किन्तु उनकी यह लड़ाई किसी व्यक्तिगत द्वेष का परिणाम न थी, अपितु सिद्धान्तों की लड़ाई थी। साम्राज्यवादी होते हुए भी अकबर गुणग्राही था। महाराणा प्रताप की मृत्यु पर उसे अत्यन्त दुःख हुआ था, क्योंकि हृदय से वह उनके गुणों का प्रशंसक था। इस समाचार से अकबर रहस्यमय रूप से मौन हो गया। उसकी यह प्रतिक्रिया उसके दरबारियों से छिपी न रह सकी, किन्तु कोई कुछ न कह सका। उसी समय उसके एक दरबारी चारण दुरसा आढ़ा ने प्रताप के प्रति श्रद्धायुक्त कविता पढ़ी। सभी दरबारियों को विश्वास था कि इससे चारण दुरसा को बादशाह का कोपभाजन बनना पड़ेगा। सभी निर्णय की भय एवं उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे, किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। अकबर ने चारण को अपने सामने बुलाया तथा उसे पुनः कविता (छप्पय) पढ़ने का आदेश दिया। चारण ने पुनः अपना छप्पय सुनाया, जो इस प्रकार था—

"अकबर की इस खोजबीन के बावजूद प्रताप का कहीं पता न लग पाना इतिहास के विद्यार्थी के मस्तिष्क में सन्देह पैदा करता है कि कहीं महाराणा प्रताप हल्दीघाटी के तत्काल बाद ही हल्दीघाटी में लगे घावों के कारण मर न गए हों।"

श्री बीड़ा की आशंका सत्य हो सकती है किन्तु प्रताप को मुगलों द्वारा न पकड़ा जाना ही इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि प्रताप उस समय जीवित ही नहीं थे। मुगल प्रताप ही क्या, उनके किसी सामन्त या अमरसिंह को भी नहीं पकड़ पाए। इसका यह अर्थ नहीं कि ये सब भी उस समय जीवित नहीं थे।

श्री बीड़ा का मत है कि हल्दीघाटी युद्ध के बाद महाराणा ने जो भी संघर्ष चलाये जा रहे हैं उन सभी का संचालन अमरसिंह ने किया, न कि प्रताप ने। उनका यह भी मानना है कि मानसिंह तथा अमरसिंह ने प्रताप के जीवित रहने की कहानी अपने निहित स्वार्थों के लिए रची—

'महाराणा प्रताप की लाश का नहीं मिल पाना और मानसिंह का हल्दीघाटी युद्ध के पश्चात् राणा का पीछा न करना, ये दो ऐसी बातें हैं, जिसने प्रताप - भूत को खड़ा रखा और बीस साल तक खड़े रखा। इस सम्बन्ध में यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इसी प्रकार बीरबल की लाश नहीं मिलने पर भी अकबर के समय कई बीरबल खड़े कर दिए गए थे।'

जो भी हो जब तक यह निर्विवाद सिद्ध नहीं हो जाता कि महाराणा प्रताप हल्दीघाटी युद्ध के तुरन्त बाद दिवंगत हो गये थे, तब तक यही मानना पड़ेगा कि उनकी मृत्यु 1597 ई० में ही हुई थी।

महाराणा प्रताप के पुत्र

महाराणा प्रताप की ग्यारह रानियां थीं, जिनसे उनके सत्तरह पुत्र उत्पन्न हुए। उनकी पत्नियों तथा उनसे उत्पन्न पुत्रों का विवरण इस प्रकार है—

रानियां	उनसे उत्पन्न पुत्र
1. महारानी अजबादे पवार	अमरसिंह और भगवानदास
2. महारानी सोलखिणीपुर बाई	सहसा और गोपाल

सप्तम अध्याय

मूल्यांकन

महाराणा प्रताप का नाम लेते ही हमारे सामने देशप्रेमी, स्वतन्त्रता उपासक वीरता के ओज से भरे मुंह तथा लम्बी मूछों वाले हाथ में भाला लिए एक अश्वारोही का चित्र उभरकर आता है। प्रत्येक भारतीय उन्हें एक श्रद्धा का पात्र तथा जन्मभूमि के स्वतन्त्रता के संघर्ष का प्रतीक मानता है। इसके अतिरिक्त उनके चरित्र में एक कुशल राजनीतिज्ञ आदर्श संगठनकर्ता, चतुर रणनीतिज्ञ आदि की सभी विशेषताएं विद्यमान थे। यहां उनके इन सभी गुणों पर एक विहंगम दृष्टि डाली जा रही है।

स्वतन्त्रता के परम उपासक

स्वतन्त्रता का अपहरण होने पर सभी सुख-सुविधाएं अर्थहीन हैं तथा इसके सुरक्षित रहने पर वन्य-जीवन भी सन्तोषप्रद है प्रताप के जीवन का यही मूलमन्त्र था। इसी को दृष्टि में रखकर उन्होंने जीवनपर्यन्त संघर्ष का मार्ग अपनाया। उस समय के प्रायः सभी हिन्दू राजाओं ने अपना राजमुकुट मुगल सम्राट् अकबर के चरणों में रख दिये थे, जिनके बदले में उन्हें जीवन की सभी सुख-सुविधाएं प्राप्त हो गयी तथा मुगल सम्राट् के दरबार में ऊंचे ऊंचे पद मिले। यदि प्रताप ऐसा चाहते, तो उनके सामने कोई कठिनाई नहीं थी। वह भी सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। यदि वह ऐसा कर लेते, तो आज प्रताप, प्रताप नहीं रहते, वह भी मुगलों के अधीन जीवन-यापन करने वाले अन्य राजपूत राजाओं की तरह विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाते।

अपनी स्वाधीनता, मातृभूमि तथा अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए उन्होंने

कुशल संगठनकर्ता

कुशल संगठनकर्ता होना भी महाराणा प्रताप के जीवन की एक अनन्य विशेषता है। उनके जीवन का एक बहुत बड़ा भाग वनों और पर्वत शृंखलाओं में व्यतीत हुआ। वनों की घाटियां और गुफाएं ही उनके लिए राजप्रासाद बने। यह उन्हीं के अद्भुत संगठन का परिणाम था कि वनवासी भीलों ने भी उनके स्वतन्त्रता यज्ञ में अपना अपूर्व योगदान दिया। ये वनों के निवासी गिरि-कन्दराओं से अच्छी तरह परिचित थे। सम्भवतः भीलों का सहयोग न मिल पाता, तो महाराणा को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में वह सफलता नहीं मिल पाती, जो मिली। जो भी हो, यह सत्य है कि भीलों का संगठन कर उन्होंने उसका भरपूर लाभ उठाया। ये भील उनके लिए गुप्तचरों का कार्य भी करते, सैनिकों का भी तथा प्रहरियों का भी।

इसके साथ ही प्रताप मुगलों के संघर्ष के समय भी अपने पड़ोसी राज्यों से भी मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। उनकी संगठन कुशलता के विषय में श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट ने लिखा है—

"प्रताप ने मुगल सम्राट् का विरोध करने के लिए संगठन तो किया ही, साथ ही अपने निकट के राजाओं से भी सम्बन्ध स्थापित किये कि वे बराबर स्वाधीनता के उस संग्राम में आहुति देने को तत्पर रहें। इसमें हिन्दू, मुसलमान का सवाल ही नहीं था। न यह लड़ाई हिन्दू और इस्लाम धर्मों के बीच थी। यह तो संघर्ष था साम्राज्यवाद और स्वाधीनता का। यह इससे जाहिर है कि प्रताप के समर्थकों में मुसलमान शासक भी थे। अकबर के आक्रमण के कारण यदि एक मित्रता का कोई सिलसिला टूट भी जाता, तो प्रताप तुरन्त दूसरा सिलसिला कायम कर लेते। जो एक बार प्रताप का हो जाता, वह अकबर के खेमे में जाकर भी मौका पाते ही लौट आता।"

प्रताप की युद्धनीति

प्रायः हल्दीघाटी युद्ध में पराजय के कारण लोग महाराणा की युद्ध शैली की आलोचना करते हैं और उनकी युद्ध शैली को दोषपूर्ण बताते हैं। यह

वनवासी बनना अच्छा समझा, किन्तु दिल्ली दरबार का दास बनना कल्पना भी नही की। उनकी इसी विशेषता के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए डा० रघुवीरसिंह लिखते हैं —

"भारत की राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता के लिए प्रयत्न करने वाले तथा राजस्थान को सर्वप्रथम प्रान्तीय एकता के सूत्र मे बांधने वाले अकबर के बजाय, अपने छोटे से राज्य मेवाड़ के स्वतन्त्र अस्तित्व की रक्षा के लिए मर मिटने वाले राणा प्रताप ही सदा भारतीय स्वतन्त्रता के सेनानियो के आदर्श बने रहे।

अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए प्रताप को संघर्ष का कठोर मार्ग अपनाना पड़ा। एक स्थान से दूसरे स्थान तक भागते रहना और अवसर मिलते ही शत्रु पर आक्रमण कर देना, यही उनका जीवन बन गया था। उनके जीवन का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि 'आराम हराम है' की उक्ति उन पर अक्षरश: सत्य चरितार्थ होती है। उन्होंने अपने इस संघर्ष को मेवाड़ में जनसंघर्ष का रूप देने मे सफलता प्राप्त की, जिससे उन्हे अपनी जनता का सक्रिय सहयोग मिला। मुगलों के साम, दाम, दण्ड और भेद सब व्यर्थ गये। कही भी कोई ऐसा उदाहरण नही मिलता, जिससे यह सिद्ध होता हो कि प्रताप के किसी व्यक्ति ने देशद्रोह का कार्य किया।

अपने इस संघर्ष से उन्होंने मुगल साम्राज्य को यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया कि जन और धन का बल ही सब कुछ नही है। यदि व्यक्ति का आत्मबल ऊंचा हो, तो वह किसी भी विपत्ति का सामना कर सकता है और अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सकता है। प्रताप स्वतन्त्रता के परम उपासक थे, वह स्वतन्त्रता के लिए ही जीवित रहे तथा सदा स्वतन्त्र रहे। मुगलो के साथ युद्धों मे यद्यपि वह हार गये थे, किन्तु इसे उन्होंने अपनी पराजय नही माना। यदि वह इसे पराजय मान लेते, तो संघर्ष मार्ग का परित्याग कर देते, अत: हल्दीघाटी अथवा किसी भी अन्य युद्ध मे उन्हे पराजित मानना उचित नही होगा, क्योंकि जय या पराजय मन की होती है; शरीर आदि की नहीं।

कुशल संगठनकर्ता

कुशल संगठनकर्ता होना भी महाराणा प्रताप के जीवन की एक अनन्य विशेषता है। उनके जीवन का एक बहुत बड़ा भाग वनों और पर्वत शृंखलाओं में व्यतीत हुआ। वनों की घाटियाँ और गुफाएं ही उनके लिए राजप्रासाद बने। यह उन्हीं के अद्भुत संगठन का परिणाम था कि वनवासी भीलों ने भी उनके स्वतन्त्रता यज्ञ में अपना अपूर्व योगदान दिया। ये वनों के निवासी गिरि-कन्दराओं से अच्छी तरह परिचित थे। सम्भवतः भीलों का सहयोग न मिल पाता, तो महाराणा को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में वह सफलता नहीं मिल पाती जो मिली। जो भी हो, यह सत्य है कि भीलों का संगठन कर उन्होंने उनका भरपूर लाभ उठाया। ये भील उनके लिए गुप्तचरों का कार्य भी करते, सैनिकों का भी तथा प्रहरियों का भी।

इसके साथ ही प्रताप मुगलों के संघर्ष के समय भी अपने पड़ोसी राज्यों से भी मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। उनकी संगठन कुशलता के विषय में श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट ने लिखा है—

"प्रताप ने मुगल सम्राट् का विरोध करने के लिए संगठन [illegible] साथ ही अपने निकट के राजाओं से भी सम्बन्ध स्थापित किए कि वे बराबर स्वाधीनता के उस संग्राम में आहुति देने को तत्पर रहें। [illegible] का सवाल ही नहीं था। न यह लड़ाई हिन्दू और [illegible] धर्मों के बीच [illegible] यह तो संघर्ष था साम्राज्यवाद और स्वाधीनता का। [illegible] प्रताप के समर्थकों में मुसलमान शासक भी थे। अकबर के आक्रमण [illegible] यदि एक मित्रता का कोई सिलसिला टूट भी जाता [illegible] निर्धारित [illegible] कर लेते। जो एक बार प्रताप [illegible] अकबर [illegible] में आकर भी मौका पाते ही लौट आता।"

प्रताप की युद्धनीति

[illegible] हल्दीघाटी युद्ध में पराजय के कारण [illegible] की आलोचना करते हैं और [illegible] युद्ध शैली का [illegible] [illegible]

कारी कार्य था, अन्यथा राजपूतों में यह परम्परा रही थी कि यदि हार निश्चित हो, तो मर मिटो। प्रताप ने इस आत्मघाती सिद्धान्त को सदा के लिए तिलांजलि देकर कुशल रणनीति का परिचय दिया।

आदर्श शासक

महाराणा प्रताप में एक आदर्श शासक के सभी गुण विद्यमान थे। अपने देश की प्रभुसत्ता की रक्षा करना किसी भी शासक का सर्वप्रथम और पुनीत कर्त्तव्य है। प्रताप से बढ़कर कोई भी व्यक्ति शासक की योग्यता की इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता। अपने राज्य की रक्षा के लिए पड़ोसी राज्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध अथवा किसी भी प्रकार से उन्हें अपने पक्ष में बनाये रखना भी शासक की योग्यता का एक अभिन्न मापदण्ड है। प्रताप का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि विषम परिस्थितियों में भी वह सदा इसके प्रति चेष्टा करते रहे। मुगलों के साथ अपने संघर्ष के समय भी उन्होंने राजस्थान के अपने पड़ोसी राज्यों, ईडर, सिरोही आदि से अपने कूटनीतिक सम्बन्ध बनाये रखे। ईडर का नारायणदास मुगल सम्राट् का मित्र बन गया था। प्रताप ने उसे अपने पक्ष में कर लिया। प्रताप की ही प्रेरणा से उसने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। सिरोही के राव सुरत्राण को उन्होंने अपने पक्ष में कर लिया और उसे अपनी सहायता के लिए भी बुलाया। जोधपुर के राव चन्द्रसेन को अपने पक्ष में कर लेना भी प्रताप की एक राजनीतिक कुशलता ही कही जाएगी। इसी चन्द्रसेन ने नाडौल में मुगल सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। स्पष्ट है, इसके पीछे प्रताप की ही प्रेरणा थी।

प्रशासन का अनुशासन कठोर होना चाहिए। आदेशों की अवहेलना होने पर यदि दण्ड न मिले, तो आदेश का कोई अर्थ नहीं रह जाता। प्रताप ने कुम्भलगढ़ छोड़ते समय समीप के सभी निवासियों को उस स्थान को छोड़कर विरान कर देने का आदेश दिया था। एक किसान द्वारा सब्जी उगाए जाने पर उन्होंने उसकी हत्या कर दी। उस उजड़े क्षेत्र में भेड़ें चराने वाले गड़रिये को प्रताप के सैनिकों ने मार डाला। ये दोनों उदाहरण भले ही आज के लिए सामयिक न रह गये हों, किन्तु इतना निश्चित है कि दण्ड का भय अनिवार्य

आलोचना आंशिक सत्य भले ही हो, किन्तु इसे सम्पूर्ण रूप में सत्य नहीं कहा जा सकता। इस युद्ध के बाद प्रताप ने छापामार युद्ध प्रणाली को अपना लिया था, जो अन्ततः उनकी सफलता का कारण बना। इसी प्रणाली से उन्होंने अकबर जैसे शक्तिशाली शत्रु का एक दशक से भी अधिक समय तक सामना किया। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए डा० गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है—

"हल्दीघाटी की पराजय को महाराणा ने कभी पराजय नहीं माना, वरन् इस पराजय के बाद उसने पर्वतीय जीवन और युद्धनीति का एक नया पृष्ठ प्रारम्भ किया। गोगूदे में मुगल सेना को रोकना इस नीति का एक अंग था। यह नीति इस बात का प्रमाण है कि प्रताप की पर्वतीयनीति ने मुगल शक्ति को विफल कर दिया। महाराणा इस प्रकार के रोक-थाम के प्रयत्न से ही सन्तुष्ट न था। उसने महाराणा कुम्भा की नीति पर अधिक बल दिया। उसने कुम्भलगढ़ से लगाकर सहाडा तक के तथा गोडवाड से लेकर आसीद और भैंसरोगढ़ के पर्वतीय नाकों पर भीलों की विश्वस्त पालों के नेताओं को लगा दिया, जो दिन-रात मेवाड की चौकसी करते थे और देखते थे कि शत्रु किसी भी भाग से भीतर न घुस सके। इन भीलो के जत्थों के साथ अन्य सैनिक भी थे, जो मुगलों को मेवाड में घुसने से रोकते थे। इस सम्पूर्ण व्यवस्था को सफल बनाने के लिए महाराणा को सुखमय जीवन बिताने की इच्छा से तिलांजलि देनी पड़ी। वह पहाड़ी कन्दराओं और जगलों में अपने परिवार के साथ घूमने लगा। जीवन की असुविधाओं और कठिनाइयों को अपने जीवन का अंग बना लिया। कभी वह एक पहाड़ी इलाके मे था, तो कभी दूसरे। यह मुगलो से छिपने की विधि न थी, वरन् एक नई पद्धति थी, जिसने भविष्य में होने वाले मुगली हमलों को, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, विफल प्रमाणित कर दिया। इस पद्धति में जमकर लड़ाई करने को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। फल यह हुआ कि मुगल जो मैदानी लड़ाई के अभ्यस्त थे, इस प्रणाली के मुकाबले कारगर सिद्ध नहीं हो सके।"

उनकी युद्ध प्रणाली में शत्रु का सीधे सामना करना उचित नहीं समझा जाता था, अपितु शत्रु के यातायात के मार्गों को अवरुद्ध कर देना, छिपकर शत्रु पर घात लगाकर हमला कर देना तथा पुनः भाग खड़ा होना इत्यादि रणनीति अपनाई जाती थी। निश्चय ही इस प्रणाली को अपनाना प्रताप का एक क्रांति-

कारी कार्य था, अन्यथा राजपूतों में यह परम्परा रही थी कि यदि हार निश्चित हो, तो मर मिटो। प्रताप ने इस आत्मघाती सिद्धान्त को सदा के लिए तिलांजलि देकर कुशल रणनीति का परिचय दिया।

आदर्श शासक

महाराणा प्रताप में एक आदर्श शासक के सभी गुण विद्यमान थे। अपने देश की प्रभुसत्ता की रक्षा करना किसी भी शासक का सर्वप्रथम और पुनीत कर्तव्य है। प्रताप से बढ़कर कोई भी व्यक्ति शासक की योग्यता की इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता। अपने राज्य की रक्षा के लिए पड़ोसी राज्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध अथवा किसी भी प्रकार से उन्हें अपने पक्ष में बनाये रखना भी शासक की योग्यता का एक अभिन्न मापदण्ड है। प्रताप का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि विषम परिस्थितियों में भी वह सदा इसके प्रति चेष्टा करते रहे। मुगलों के साथ अपने संघर्ष के समय भी उन्होंने राजस्थान के अपने पड़ोसी राज्यों, ईडर, सिरोही आदि से अपने कूटनीतिक सम्बन्ध बनाये रखे। ईडर का नारायणदास मुगल सम्राट् का मित्र बन गया था। प्रताप ने उसे अपने पक्ष में कर लिया। प्रताप की ही प्रेरणा से उसने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। सिरोही के राव सुरत्राण को उन्होंने अपने पक्ष में कर लिया और उसे अपनी सहायता के लिए भी बुलाया। जोधपुर के राव चन्द्रसेन को अपने पक्ष में कर लेना भी प्रताप की एक राजनीतिक कुशलता ही कही जाएगी। इसी चन्द्रसेन ने नाडौल में मुगल सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। स्पष्ट है, इसके पीछे प्रताप की ही प्रेरणा थी।

प्रशासक का अनुशासन कठोर होना चाहिए। आदेशों की अवहेलना होने पर यदि दण्ड न मिले, तो आदेश का कोई अर्थ नहीं रह जाता। प्रताप ने कुम्भलगढ़ छोड़ते समय समीप के सभी निवासियों को उस स्थान को छोड़कर वीरान कर देने का आदेश दिया था। एक किसान द्वारा सब्जी उगाए जाने पर उन्होंने उसकी हत्या कर दी। उस उजड़े क्षेत्र में भेड़ें चराने वाले गड़रिये को प्रताप के सैनिकों ने मार डाला। ये दोनों उदाहरण भले ही आज के लिए सामयिक न रह गये हों, किन्तु इतना निश्चित है कि दण्ड का भय अनिवार्य

है। इसके न रहने पर मानव समाज अराजकतापूर्ण हो जाएगा। इससे उत्पन्न होने वाले भयंकर परिणामों की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मेवाड़ की शान्ति के बाद प्रताप का एक नया ही रूप हमारे सामने आता है। लम्बे संघर्ष के बाद मेवाड़ को शान्ति प्राप्त हुई। मुगल संघर्षों में मेवाड़ की स्थिति अत्यन्त दयनीय तथा वीरान जैसी हो गई थी। अतः प्रताप ने इन समस्याओं के निराकरण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने चावण्ड को अपनी नई राजधानी बनाया, जहाँ सुन्दर भवनों का निर्माण कराया गया। इन भवनों की सुदृढ़ता अद्भुत है। इनकी निर्माण शैली में राणा कुम्भा तथा उदयसिंह की शैली का स्पष्ट प्रभाव है। इनमें गुजरात की भव्यता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। समस्त निर्माण कार्य में आकार, प्रकार, समय की आवश्यकता आदि का पूरा ध्यान रखा गया है। इनके भग्नावशेष आज भी इनकी भव्य स्थापत्य कला की कहानी कहते हैं।

इसके बाद प्रताप ने राज्य की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कार्य किए। ये सभी बातें प्रताप के स्थापत्य कला के प्रति प्रेम, विद्या अनुराग, अपनी सांस्कृतिक धरोहर के लिए सम्मान आदि का सुन्दर परिचय देते हैं। इस विषय को स्पष्ट करते हुए श्री गोपीनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक 'मेवाड़ मुगल सम्बन्ध' में लिखा है—

"चावण्ड की महिमा इन खण्डहरों में अमिट रूप में प्रकट है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके साथ-साथ यहां ललितकला, वाणिज्य, व्यापार और विद्योन्नति भी होती रही। महाराणा प्रताप तथा अमरसिंह के समय में यहां संस्कृत भाषा को बड़ा प्रोत्साहन मिला, जैसा कि उस समय कतिपय हस्तलिखित ग्रन्थों से स्पष्ट है। चित्रकला के सम्बन्ध में यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मेवाड़ी चित्रकला प्रारम्भिक उत्कृष्ट नमूनों का प्रादुर्भाव यहीं से हुआ है। यहां के चित्रों में भागवत के कुछ चित्र देखने को मिले, जो एक मुस्लिम चित्रकार सिलहाद्दीन द्वारा चित्रित किए गए थे। चित्र में मेवाड़ी शैली का सादा व सुन्दर रूप स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें मानसिक भावों के प्रदर्शन के साथ प्राकृतिक वस्तुओं को भी ठीक अंकित किया गया है। रंगों में सादगी एवं गहराई है। इन चित्रों से स्पष्ट है कि मेवाड़ी चित्रकला का प्रारम्भिक क्षेत्र चावण्ड रहा होगा।"

उनका संघर्ष अपनी सम्प्रभुता की रक्षा के लिए था। इस संघर्ष को हिन्दू धर्म और इस्लाम का संघर्ष कहना भी इतिहास के साथ अन्याय होगा, और न ही यह कहा जा सकता है कि प्रताप हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए लड़ रहे थे। कैसी अद्भुत बात है कि हल्दीघाटी युद्ध में मुगल पक्ष का मुख्य सेनापति मानसिंह एक हिन्दू (राजपूत) था और मेवाड़ के हरावल दस्ते का सेनापति हाकिम खाँ सूर एक मुसलमान था। वस्तुत: यह एक सिद्धान्तों का संघर्ष था। एक ओर मुगल साम्राज्यवाद का अहं था और दूसरी ओर अपने राज्य मेवाड़ की रक्षा की भावना थी, जो मुगल साम्राज्य की सर्वोच्चता को चुनौती दे रही थी।

इस ऐतिहासिक सत्य को स्पष्ट करते हुए डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक (राइज एण्ड फाल आफ मुगल्स) में लिखा है—

"राणा प्रताप की वीरता, उत्कट देशप्रेम कष्ट सहने की क्षमता और त्याग के प्रति आधुनिक लेखकों ने उनके सद्गुणों को ऐसे तथ्यों से ढक देने का प्रयत्न किया है, जो वास्तविकता से दूर है। अबुलफजल और कुछ फारसी लेखकों ने वीरवर राणा की अवहेलना की है, जबकि दूसरे ने अकबर और मानसिंह की निन्दा की है। यह कोई हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न नहीं था। न यह हिन्दू और इस्लाम धर्म का संघर्ष था। यह तो सीधे-सीधे मुगल साम्राज्य और मेवाड़ के बीच संघर्ष था। यदि ऐसा न होता तो प्रताप अपने एक सैन्यदल का नेतृत्व हकीम खां सूर को न सौंपते और न अकबर अपनी समस्त सेना का नेतृत्व मानसिंह को देता। जिस भावना ने अकबर को मालवा के बाजबहादुर को, गुजरात के मुजफ्फर को, बंगाल के दाउद को, सिन्ध के मिर्जा जानीबेग को और काश्मीर के युसुफ को पराजित करने के लिए प्रेरित किया, उसी ने उसे मेवाड़ से टक्कर लेने की प्रेरणा भी दी। यदि मेवाड़ का शासक कोई मुसलमान भी होता, तो तब भी अकबर यही करता। इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता कि मेवाड़ पर आक्रमण के पीछे राजनीतिक के अतिरिक्त कोई दूसरा उद्देश्य था। साम्राज्यवाद को उचित कहें अथवा अनुचित, किन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने उसे वैसी ही मान्यता दी जैसी यूरोपियनों ने।"

डा० धीरेन्द्रदत्त भटनागर ने इस विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है—

सहायता करना ही तत्कालीन सामयिक अपेक्षा थी। इस विषय में डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी अपने प्रबल तर्क देते हुए लिखते हैं—

"राणा प्रताप के साहस, दृढ़ निश्चय और अजेय आत्मिक शक्ति के प्रति हमारी चाहे कितनी ही श्रद्धा क्यों न हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि वह जिस सिद्धान्त पर खड़ा था, वह उससे नितान्त भिन्न था, जिससे राजपूताने के तत्कालीन राजा प्रेरित थे। वह मेवाड़ की स्वतन्त्रता और सिसोदिया घराने के प्रभुत्व के लिए लड़ता रहा, तो दूसरे राजा सिसोदिया साम्राज्य के पक्ष में प्रेरित नहीं हो सके, क्योंकि मेवाड़ के प्रभुत्व प्राप्त राणाओं की नीति का उन्हें सन्तोषजनक अनुभव नहीं था। यह सिद्ध करने की चेष्टा करना निरर्थक होगा कि अन्य राजपूत कायर हो गए थे और इतने निर्बल थे कि वे भौतिक सुख के लिए अपनी स्वतन्त्रता बेचने को तैयार हो गए। उनका इतिहास इस अकारण धारणा के विरुद्ध साक्षी है। पहले की भाँति वे राणा के कन्धे से कन्धा मिलाकर अकबर के विरुद्ध अवश्य लड़ते, यदि उन्हें घर-द्वार और धर्म की स्वतन्त्रता और रक्षा के विषय में उससे आशंका होती। अकबर ने अन्य राजपूत राजाओं के प्रति अपने व्यवहार से यह सिद्ध कर दिया कि न वह उनके राज्यों पर अधिकार करना चाहता था और न उनके सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप करना चाहता था। वह इतना ही चाहता था कि वे नवीन साम्राज्य संघ का प्रभुत्व मान लें, जिसके चार अर्थ होते थे। एक यह कि खिराज के रूप में राजा केन्द्रिय शासन को कुछ रकम देते रहें। दूसरा यह कि वे अपनी बाह्यनीति तथा पारस्परिक युद्ध द्वारा अपने अधिकारों की रक्षा स्वयं करने की अपेक्षा यह भार केन्द्रिय शासन को सौंप दें। तीसरा यह कि वे आवश्यकता होने पर केन्द्रिय शासन को सैनिक सहायता देते रहें। चौथा यह कि वे स्वयं के केन्द्रिय साम्राज्य का अभिन्न अंग मानें, न कि अलग इकाई बने रहें। ... बड़े बादशाहत में सर्वोच्च पद उनके लिए खुले थे और धर्म या जाति भेद के होते हुए भी पद की समानता के आधार पर सबको समान सम्मान प्राप्त था। इस विषय में यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि अकबर ने प्रायः प्रत्येक मुस्लिम राज्य पर पूर्ण अधिकार कर लिया था किन्तु उसने कोई बड़ा हिन्दू राज्य सल्तनत में नहीं मिलाया और सब शासन संघ में सम्मिलित होने पर

अकबर ने राजपूत राज्यों को सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के सा आन्तरिक शासन का जो वचन दिया, उसे अस्वीकार करने का कोई बहुत नहीं रह गया था। जो राजपूत राजा निरन्तर युद्ध और अराजकता से दुखी थे वे सब नए विधान के अन्तर्गत शान्ति, व्यवस्था और समृद्धि की आशा कर सकते थे। मुगलों का प्रभुत्व उन्हें वह निधि दे सका, जो मेवाड़ पहले कभी नहीं दे सका था। संघ की यह नीति भी नहीं रही कि राजपूतों को अपने रणकौशल तथा प्रशासनिक योग्यता के उपयोग का अवसर न मिले। इस विवाद का कोई महत्त्व नहीं था। कि मुगल बादशाह ने वैवाहिक सम्बन्ध के लिए राजपूतों को विवश किया, क्योंकि मेवाड़ के चारणों के प्रचारात्मक गीतों से बाहर हमें इस बात का प्रमाण कहीं नहीं मिलता कि वैवाहिक सम्बन्धों के विषय में कोई व्यापक नीति थी, जो क्रूरता पूर्वक सभी राजपूत राजाओं पर लादी गई। सच पूछिए तो इन सम्बन्धों मे कोई नवीनता नहीं थी। गुजरात, मालवा और दक्षिण के इतिहास मे बहुत से ऐसे सम्बन्धो के उल्लेख मिलते हैं। इस बात का हमें कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता कि अकबर ने इन सम्बन्धों के लिए कोई जबरदस्ती की या राजपूतो के मध्य इन वैवाहिक सम्बन्धों के विरुद्ध कोई विद्रोह उठा। विवाह में लड़की देने या न देने के विषय में राजपूत स्वतन्त्र रहे। सभी पहलुओं पर विचार करके अधिकांश राजपूत राजाओं ने सच्चे दिलों से मुगल बादशाह के अधीन साम्राज्य संघ में शामिल हो जाना सिसोदियों के प्रभुत्व को पुनः स्थापित करने के असम्भव उद्योग में सहायक होने की अपेक्षा अधिक पसन्द किया, क्योंकि वह प्रयोग कई बार किया जा चुका था। यथार्थ और बुद्धिमानी मुगल साम्राज्य संघ के पक्ष में थी, तो भावुकतापूर्ण अतीतवाद राणा के साथ था।"

अपने इस वर्णन में डॉ० त्रिपाठी ने राजपूतों द्वारा मुगल साम्राज्य की प्रभुसत्ता स्वीकार करने के लिए अन्य राजपूत राजाओं की भूरिशः प्रशंसा की है और उनके इस कार्य को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। एक ओर उन्होंने महाराणा प्रताप के संघर्ष का उद्देश्य केवल सिसोदिया घराने का प्रभुत्व स्थापित करना माना है, और दूसरी ओर अकबर के साम्राज्य-वाद को बड़ी ही सफाई के साथ मुगल शासन संघ और साम्राज्य संघ जैसे

पक्षों से सुशोभित किया है। यदि बाबर का कार्य सिसोदिया वंश का
प्रभुत्व स्थापित करना कहा जा सकता है तो क्या अकबर की विस्तारवादी
नीति बाबर वंश का प्रभुत्व स्थापित करना नहीं कही जाएगी? लगता है डॉ०
त्रिपाठी इस तथ्य को भूल गए हैं कि अकबर का उद्देश्य भी अपने वंश का राज्य
स्थापित करना ही था, न कि राष्ट्र की ओर कि इसमें सहयोग न देना भारत
की एकता में बाधक होना कहा जाए। और यदि अकबर समस्त भारत का एक-
छत्र सम्राट था। स्वाधीन बन [illegible] तो प्रताप का कार्य औचित्यहीन ही कहा
जाता। यह सत्य है कि अकबर धर्मनिरपेक्ष शासक था, परन्तु क्या वह इस बात
से भी आश्वस्त हो सकता था कि उसके उत्तराधिकारी भी उसी की नीति पर
चलेंगे? क्या उसके उत्तराधिकारी उसकी नीति पर अटल रहे? क्या परवर्ती
काल में (औरंगजेब के समय में भी) अधीनता स्वीकार करने वाले राजपूत
राज्यों के साथ अकबर की ही नीति का पालन किया गया? यद्यपि अधीनता
स्वीकार करने वाले शासकों को अपने राज्य के शासन संचालन में पूर्ण स्वायत्तता
थी और उन्हें युद्धों में रणकौशल दिखाने का अवसर दिया जाता था फिर भी
क्या वे अकबर की बराबरी का दावा कर सकते थे? क्या युद्धों में रणकौशल
दिखाने का अवसर ही सब कुछ है? उन युद्धों में विजय का फल किसे मिलता
था? डॉ० त्रिपाठी लिखते हैं कि 'अकबर ने प्रायः सभी मुस्लिम राज्यों पर पूर्ण
अधिकार कर लिया था परन्तु स्वतन्त्र कोई बड़ा हिन्दू राज्य सल्तनत में नहीं
मिलाया।" इसका क्या अर्थ है? क्या बड़े हिन्दू राज्यों को सल्तनत में मिलाने
से अकबर को उनके शासकों से विद्रोह का भय था? यदि नहीं तो इस संघ
[illegible] कहाँ तक सही है? एक ही संघ में यह दुहरी नीति क्यों? उपर्युक्त पंक्तियों
में अकबर की राजपूत राजकुमारियों से विवाह नीति की भी बढ़ा-चढ़ाकर
प्रशंसा की गई है। हम मानते हैं कि अन्तर्जातीय अथवा अन्तर्धार्मिक विवाह
अवश्य होने चाहिए, किन्तु अकबर ने केवल राजपूतों से ही विवाह सम्बन्ध क्यों
किए? क्या उसने नीचे समझी जाने वाली किसी भी (हिन्दू या मुसलमान) जाति
से विवाह सम्बन्ध स्थापित किए थे? यदि नहीं तो अकबर की इस विवाह-नीति
को केवल उसकी राजनीतिक चाल नहीं कहा जाएगा?

प्रायः पाठकों अथवा श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए लोग कुछ

उत्साहवर्धक परिणाम न मिले हों, लेकिन हर प्रत्यक्ष असफलता को उससे कहीं अधिक उपलब्धियों ने ढक-सा दिया है।" सफल न होने पर भी हर लड़ाई के बाद प्रताप ऊपर उठते गये, और अन्त में ऐसी ऊंचाई पर पहुंच गए कि आज इतने वर्षों बाद भी 'प्रातः स्मरणीय' कहकर याद किया जाता है। ऐसे असाधारण लोगों के व्यक्तित्व का विश्लेषण और उनकी देन का मूल्यांकन उनकी अस्थाई सफलता-असफलता के आधार पर नहीं किया जा सकता। उनके सारे जीवन पर विचार करना होगा। प्रताप उन लोगों में थे, जो हारकर भी जीतते हैं। आज भी स्वतन्त्रता के लिए आत्मोत्सर्ग करने वालों में प्रताप का नाम पहले आता है। प्रताप अगर चाहते तो अकबर से सन्धि करके आराम और चैन की जिन्दगी बिता सकते थे। लेकिन ऐसा उन्होंने नहीं किया। जान-बूझकर अपने और अपने परिवार के लिए, परिजनों और प्रजाजनों के लिए, सामन्तों और सरदारों के लिए, कष्ट और बलिदान का रास्ता चुना। केवल यही नहीं वे स्वयं ऐसी जीती-जागती प्रेरणा बन गये कि उनके साथियों और अनुचरों ने हंसते-हंसते सारे कष्ट सहे। स्वयं प्रताप के परिवार के कुछ सदस्य अकबर से जा मिले थे— इनमें उनके भाई शक्तिसिंह, सगर और जगमाल भी थे। लेकिन उनकी संख्या नगण्य थी। प्रताप के राज्य के अधिकांश लोगों ने तो उन्हीं का साथ दिया, और खूब दिया।'

प्रताप एक कुशल सेनानायक, अच्छे प्रशासक, परम स्वतन्त्रता प्रेमी तथा अन्य महानीय गुणों से विभूषित थे। उनके अप्रतिम संघर्ष भारतीय जनमानस को अजस्र प्रेरणा देता रहेगा। एक योग्य सेनापति तथा प्रशासक के गुणों के चर्चा होने पर प्रताप का नाम सदा सम्मान के साथ लिया जाएगा। इस विषय में अपने विचारों का परिचय देते हुए श्री मिश्रीलाल माण्डोत के शब्द हैं—

"प्रताप में एक अच्छे सेनानायक के गुण ही नहीं थे, वरन् उनमें एक अच्छे व्यवस्थापक की भी विशेषताएं थीं। उनका ओजस्वी चरित्र उन प्रतीकों में है, जो शासन, कला तथा सामाजिक संगठनों से सम्बन्धित है। प्रताप के स्वतन्त्रता के लिए अटल निश्चय, अप्रतिम त्याग, और बलिदान ने उन्हें भारतीय इतिहास का एक अमर व्यक्तित्व बना दिया है। प्रताप को राष्ट्रनायक कहना अनुचित नहीं होगा। प्रताप ने अपने अन्तिम 11 वर्षों में जब संघर्ष से मुक्ति मिली,

भीषण संकटों में समुचित उपयोग नहीं कर पाता। प्रताप में इन सभी गुणों का अद्भुत समन्वय था। इसी कारण वह उस प्रशंसनीय गौरव को प्राप्त करने में समर्थ हुए, जिसे तत्कालीन कोई भी अन्य शासक नहीं प्राप्त कर सका। इसीलिए प्रताप आज अपने दिवंगत होने के लगभग चार सौ वर्ष बाद भी भारतीय जनमानस के श्रद्धास्पद बने हुए हैं और भविष्य में भी बने रहेंगे। भौतिक रूप में न रहने पर भी उनका आदर्श भारतीयों को युगों-युगों तक देशप्रेम, स्वतन्त्रता अनुराग, संघर्ष आदि की प्रेरणा देता रहेगा या हम कह सकते हैं कि अपने यश शरीर से महाराणा प्रताप हमारे हृदयों में सदा-सर्वदा विद्यमान रहेंगे। अन्त में सुप्रसिद्ध राजनेता और साहित्यकार डॉ० सम्पूर्णानन्द के शब्दों में—

"कुछ लोगों के सम्बन्ध में लोक में ऐसा विश्वास है कि वह लोग सदा अमर हैं; अर्थात् एक कल्प तक जीवित रहेंगे। इस बात पर विश्वास करना असम्भव है। यह व्यक्ति उन लोगों में भी नहीं है, जो समाज में अवतरित पुरुषों या ऋषि-मुनियों में गिने जाते हों। उदाहरण के लिए अश्वत्थामा जैसे व्यक्ति के सम्बन्ध में किसी ऐसी विशेषता की चर्चा सुनने में नहीं आता, जो किसी भी अर्थ में लोकोत्तर हो और यह बात तो सहज ही समझ में आ सकती है कि इतना लम्बा जीवन अपने लिए और दूसरों के लिए भारस्वरूप हो जाएगा। ऐसी अमरता यदि प्राप्त भी हो सकती हो, तो कौड़ियों के मोल भी लेने की वस्तु नहीं हो सकती।

"परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं, जिनको सच्चे अर्थों में अमर कहा जा सकता है। उनका पंच भौतिक शरीर तो नहीं रह जाता, परन्तु उनका यश-शरीर सैकड़ों, सहस्रों वर्षों तक, कभी कभी ज्यों का त्यों बना रहता है, प्रत्युत सच तो यह है कि काल की गति के साथ-साथ उसके कलेवर में और वृद्धि हो जाती है। उनके सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएं बन जाती हैं और उनके जीवन चरित के मूल रूप में इस प्रकार घुल-मिल जाती हैं कि उसका अभिन्न अंग बन जाती हैं। ऐसे ही महापुरुषों में महाराणा प्रताप थे। "प्रताप की कीर्ति अमर है और देश-काल में अनेक परिवर्तनों के होने पर भी वह मनुष्यों को उस समय तक स्फूर्ति देती रहेगी, जब तक मानव समाज में ऊंचे चरित्र, त्याग, शौर्य और आत्मोत्सर्ग का आदर रहेगा।"

उसने मेवाड़ में पुनः सुशासन और व्यवस्था की स्थापना की। प्रताप की 1597 में मृत्यु एक युग की समाप्ति का प्रतीक है। वास्तव में एक कुशल शासक, चतुर कूटनीतिज्ञ, योग्य सेनापति और सफल संगठनकर्ता के रूप में प्रताप का नाम सम्मान सहित लिया जायेगा, जहां कहीं भी इन गुणों को सम्मान दिया जाएगा।

प्रताप का बाह्य व्यक्तित्व भी उनके अन्तर्व्यक्तित्व के समान ही ओजस्वी और प्रभावोत्पादक था। उनके इस व्यक्तित्व का शब्द चित्रण करते हुए डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है—

"ज्यों ही हम प्रताप का स्मरण करते हैं, त्यों ही हमारे सामने उच्च विचारों की दुनिया और संस्मरण का नजारा एकाएक उपस्थित होने लगता है। वह एक युद्ध का नायक था, जो डीलडौल से लम्बा और आकृति से वैभव-पूर्ण था। उसका ललाट ऊंचा था और आंखों से तेज बरसता था। उसकी मूंछें भरी हुई थीं। उसके सम्पूर्ण शारीरिक ढांचे में दृढ़ संकल्प का आभास स्पष्ट दिखाई देता था। शरीर की भांति उसकी वेशभूषा, जिसमें उसके चित्रकार उसे दिखाते हैं, सुपरिचित हैं। समकालीन चित्रों के अनुसार छोटी पगड़ी, पीली लम्बी अंगरखी और कमरबन्ध उसके पहनावे के प्रमुख अंग थे। जंगलों, पहाड़ियों और घाटियों में भटकते हुए उसके प्रारम्भिक जीवन के चरित्र का निर्माण हुआ था। कष्टों ने उसे धैर्य, शान्ति, साहस और निष्ठा का पाठ पढ़ाया था। उसमें अपने देश के प्रति श्रद्धा और विश्वास अनायास जाग्रत हो गये थे। यही कारण था कि वह अपने राज्य की रक्षा के लिए बड़े से-बड़े उत्सर्ग के लिए उद्यत रहता था। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रताप के जीवन के प्रारम्भिक वातावरण ने, जिसमें उसने अपना बाल्यकाल बिताया था, उसमें एक चरित्रबल तथा जीवन का वह दर्शन उत्पन्न कर दिया था, जो उस समय के अन्य राजपूतों की अपेक्षा उसकी विशिष्टता दिखाता है।"

वीरता, त्याग, देशप्रेम और निःस्वार्थ भावना से कर्तव्य का पालन करना महनीय एवं पुरुषोचित गुण हैं, जिनका मानव समाज सर्वत्र और सदा से सम्मान करता आया है। इन गुणों के साथ ही एक अदम्य मनोबल महाराणा प्रताप की एक सबसे बड़ी विशेषता है। इसके अभाव में व्यक्ति अन्य गुणों का

भीषण संकटों में अनुचित समझौता नहीं कर पाता। प्रताप में इन सभी गुणों का अद्भुत समन्वय था। इसी कारण वह उस प्रशंसनीय गौरव को प्राप्त करने में समर्थ हुए, जिसे तत्कालीन कोई भी अन्य शासक नहीं प्राप्त कर सका। इसी लिए प्रताप आज अपने दिवंगत होने के लगभग चार सौ वर्ष बाद भी भारतीय जनमानस में श्रद्धास्पद बने हुए हैं और भविष्य में भी बने रहेंगे। भौतिक रूप में न रहा पर भी उनका आदर्श भारतीयों को युगों-युगों तक देशप्रेम, स्वतन्त्रता अनुराग, संघर्ष आदि की प्रेरणा देता रहेगा। हम कह सकते हैं कि अपने यश शरीर से महाराणा प्रताप हमारे हृदयों में सदा सर्वदा विद्यमान रहेंगे। अन्त में सुविदित राजनेता और साहित्यकार डॉ० सम्पूर्णानन्द के शब्दों में—

"कुछ लोगों के सम्बन्ध में लोक में ऐसा विश्वास है कि वह लोग सदा अमर हैं, अर्थात् एक कल्प तक जीवित रहेंगे। इस बात पर विश्वास करना असम्भव है। यह शक्ति उन लोगों में भी नहीं है, जो समाज में अवतरित पुरुषों या ऋषि-मुनियों में गिने जाते हों। उदाहरण के लिए अश्वत्थामा जैसे व्यक्ति के सम्बन्ध में किसी ऐसी विशेषता की चर्चा सुनने में नहीं आता, जो किसी भी अर्थ में लोकोत्तर हो और यह बात तो सहज ही समझ में आ सकती है कि ऐसा लम्बा जीवन अपने लिए और दूसरों के लिए भारस्वरूप हो जाएगा। ऐसी अमरता यदि प्राप्त भी हो सकती हो, तो कौड़ियों के मोल भी लेने की वस्तु नहीं हो सकती।

"परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं, जिनको सच्चे अर्थों में अमर कहा जा सकता है। उनका पंच भौतिक शरीर तो नहीं रह जाता, परन्तु उनका यश-कार्य सैकड़ों, सहस्रों वर्षों तक, कभी-कभी ज्यों का त्यों बना रहता है, बल्कि सच तो यह है कि काल की गति के साथ-साथ उसके कलेवर में और वृद्धि हो जाती है। उसके सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएं बन जाती हैं और उसके जीवन चरित के मूल रूप में इस प्रकार घुल-मिल जाती हैं कि उसका अभिन्न अंग बन जाती हैं। ऐसे ही महापुरुषों में महाराणा प्रताप थे।'''प्रताप की कीर्ति अमर है और देश-काल में अनेक परिवर्तनों के होने पर भी वह मनुष्यों को उस समय तक स्फूर्ति देती रहेगी, जब तक मानव समाज में ऊंचे चरित्र, त्याग, शौर्य और आत्मोत्सर्ग का आदर रहेगा।"

उसने मेवाड़ में पुनः सुशासन और व्यवस्था की स्थापना की। प्रताप की 1597 में मृत्यु एक युग की समाप्ति का प्रतीक है। वास्तव में एक कुशल शासक, चतुर कूटनीतिज्ञ, योग्य सेनापति और सफल संगठनकर्ता के रूप में प्रताप का नाम सम्मान सहित लिया जायेगा, जहां कहीं भी इन गुणों को सम्मान दिया जाएगा।

प्रताप का बाह्य व्यक्तित्व भी उनके अन्तर्व्यक्तित्व के समान ही ओजस्वी और प्रभावोत्पादक था। उनके उस व्यक्तित्व का शब्द चित्रण करते हुए डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है—

"ज्यों ही हम प्रताप का स्मरण करते हैं, त्यों ही हमारे सामने उच्च विचारों की दुनिया और संस्मरण का नजारा एकाएक उपस्थित होने लगता है। वह एक युद्ध का नायक था, जो डीलडौल में लम्बा और आकृति से वैभव-पूर्ण था। उसका ललाट ऊंचा था और आंखों से तेज बरसता था। उसकी मूंछें भरी हुई थी। उसके सम्पूर्ण शारीरिक ढांचे में दृढ़ संकल्प का आभास स्पष्ट दिखाई देता था। शरीर की भांति उसकी वेशभूषा, जिसमें उसके चित्रकार उसे दिखाते हैं, सुपरिचित हैं। समकालीन चित्रों के अनुसार छोटी पगड़ी, पीली लम्बी अंगरखी और कमरबन्ध उसके पहनावे के प्रमुख अंग थे। जंगलों, पहाड़ियों और घाटियों में भटकते हुए उसके प्रारम्भिक जीवन के चरित्र का निर्माण हुआ था। कष्टों ने उसे धैर्य, शान्ति, साहस और निष्ठा का पाठ पढ़ाया था। उसमें अपने देश के प्रति श्रद्धा और विश्वास अनायास जाग्रत हो गये थे। यही कारण था कि वह अपने राज्य की रक्षा के लिए बड़े से-बड़े उत्सर्ग के लिए उद्यत रहता था। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रताप के जीवन के प्रारम्भिक वातावरण ने, जिसमें उसने अपना बाल्यकाल बिताया था, उसमें एक चरित्रबल तथा जीवन का वह दर्शन उत्पन्न कर दिया था, जो उस समय के अन्य राजपूतों की अपेक्षा उसकी विशिष्टता दिखाता है।"

वीरता, त्याग, देशप्रेम और निःस्वार्थ भावना से कर्तव्य का पालन करना महनीय एवं पुरुषोचित गुण हैं, जिनका मानव समाज सर्वत्र और सदा से सम्मान करता आया है। इन गुणों के साथ ही एक अदम्य मनोबल महाराणा प्रताप की एक सबसे बड़ी विशेषता है। इसके अभाव में व्यक्ति अपने अन्य गुणों का

भीषण संकटों में समुचित उपयोग नहीं कर पाता। प्रताप में इन सभी गुणों का अद्भुत समन्वय था। इसी कारण वह उस प्रशंसनीय गौरव को प्राप्त करने में समर्थ हुए, जिसे तत्कालीन कोई भी अन्य शासक नहीं प्राप्त कर सका। इसी लिए प्रताप आज अपने दिवंगत होने के लगभग चार सौ वर्ष बाद भी भारतीय जनमानस के श्रद्धास्पद बने हुए हैं और भविष्य में भी बने रहेंगे। भौतिक रूप में न रहने पर भी उनका आदर्श भारतीयों को युगों-युगों तक देशप्रेम, स्वतन्त्रता अनुराग, संघर्ष आदि की प्रेरणा देता रहेगा या हम यह कह सकते हैं कि अपने यश शरीर से महाराणा प्रताप हमारे हृदयों में सदा-सर्वदा विद्यमान रहेंगे। अन्त में सुप्रसिद्ध राजनेता और साहित्यकार डॉ० सम्पूर्णानन्द के शब्दों में—

"कुछ लोगों के सम्बन्ध में लोक में ऐसा विश्वास है कि वह लोग सदा अमर हैं, अर्थात् एक कल्प तक जीवित रहेंगे। इस बात पर विश्वास करना असम्भव है। यह व्यक्ति उन लोगों में भी नहीं है, जो समाज में अवतरित पुरुषों या ऋषि-मुनियों में गिने जाते हों। उदाहरण के लिए अश्वत्थामा जैसे व्यक्ति के सम्बन्ध में किसी ऐसी विशेषता की चर्चा सुनने में नहीं आता, जो किसी भी अर्थ में लोकोत्तर हो और यह बात तो सहज ही समझ में आ सकती है कि [illegible] लम्बा जीवन अपने लिए और दूसरों के लिए भारस्वरूप हो जाएगा। ऐसी अमरता यदि प्राप्त भी हो सकती हो, तो कौड़ियों के मोल भी [illegible] वस्तु नहीं हो सकती।

"परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं, जिनको सच्चे अर्थों में अमर कहा जा सकता है। उनका पंच भौतिक शरीर तो नहीं रह जाता, परन्तु उनका यश-शरीर सैकड़ों सहस्रों वर्षों तक, कभी-कभी ज्यों का त्यों बना रहता है, [illegible] सच तो [illegible] है कि काल की गति के साथ-साथ उसके कलेवर में और वृद्धि हो जाती है। उनके सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएं बन जाती हैं और उनके जीवन चरित्र के [illegible] इस प्रकार घुल-मिल जाती हैं कि उसका अभिन्न अंग बन जाती हैं। ऐसे ही महापुरुषों में महाराणा प्रताप थे।···प्रताप की कीर्ति अमर है और [illegible] में अनेक परिवर्तनों के होने पर भी वह मनुष्यों को उस समय तक स्फूर्ति देती रहेगी, जब तक मानव समाज में ऊंचे चरित्र, त्याग, शौर्य और आत्मोत्सर्ग का आदर रहेगा।"

उनने मेवाड़ में पुनः सुशासन और व्यवस्था की स्थापना की। प्रताप की 1597 में मृत्यु एक युग की समाप्ति का प्रतीक है। वास्तव में एक कुशल शासक, चतुर कूटनीतिज्ञ, योग्य सेनापति और सफल संगठनकर्ता के रूप में प्रताप का नाम सम्मान सहित लिया जायेगा, जहा कहीं भी इन गुणों को सम्मान दिया जाएगा।

प्रताप का बाह्य व्यक्तित्व भी उनके अन्तर्व्यक्तित्व के समान ही ओजस्वी और प्रभावोत्पादक था। उनके उस व्यक्तित्व का शब्द चित्रण करते हुए डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है—

"ज्यों ही हम प्रताप का स्मरण करते हैं, त्यों ही हमारे सामने उच्च विचारों की दुनिया और संस्मरण का नजारा एकाएक उपस्थित होने लगता है। वह एक युद्ध का नायक था, जो डीलडौल में लम्बा और आकृति से वैभवपूर्ण था। उसका ललाट ऊंचा था और आंखों से तेज बरसता था। उसकी मूंछें भरी हुई थी। उसके सम्पूर्ण शारीरिक ढांचे में दृढ संकल्प का आभास स्पष्ट दिखाई देता था। शरीर की भांति उसकी वेशभूषा, जिसमें उसके चित्रकार उसे दिखाते है, सुपरिचित हैं। समकालीन चित्रों के अनुसार छोटी पगड़ी, पीली लम्बी अंगरखी और कमरबन्ध उसके पहनावे के प्रमुख अंग थे। जंगलों, पहाड़ियों और घाटियों में भटकते हुए उसके प्रारम्भिक जीवन के चरित्र का निर्माण हुआ था। कष्टों ने उसे धैर्य, शान्ति, साहस और निष्ठा का पाठ पढ़ाया था। उसमें अपने देश के प्रति श्रद्धा और विश्वास अनायास जाग्रत हो गये थे। यही कारण था कि वह अपने राज्य की रक्षा के लिए बड़े-से-बड़े उत्सर्ग के लिए उद्यत रहता था। संक्षेप में हम यह कह सकते है कि प्रताप के जीवन के प्रारम्भिक वातावरण ने, जिसमें उसने अपना बालकाल बिताया था, उसमें एक चरित्रबल तथा जीवन का वह दर्शन उत्पन्न कर दिया था, जो उस समय के अन्य राजपूतों की अपेक्षा उसकी विशिष्टता दिखाता है।"

वीरता, त्याग, देशप्रेम और निःस्वार्थ भावना से कर्तव्य का पालन करना महनीय एवं पुरुषोचित गुण हैं, जिनका मानव समाज सर्वत्र और सदा से सम्मान करता आया है। इन गुणों के साथ ही एक अदम्य मनोबल महाराणा प्रताप की एक सबसे बड़ी विशेषता है। इसके अभाव में व्यक्ति अपने अन्य गुणों का

भीषण संकटों में समुचित उपयोग नहीं कर पाता। प्रताप में इन सभी गुणों का अद्भुत समन्वय था। इसी कारण वह उस प्रशंसनीय गौरव को प्राप्त करने में समर्थ हुए, जिसे तत्कालीन कोई भी अन्य शासक नहीं प्राप्त कर सका। इसी लिए प्रताप आज इतने दिवंगत होने के लगभग चार सौ वर्ष बाद भी भारतीय जनमानस में श्रद्धास्पद बने हुए हैं और भविष्य में भी बने रहेंगे। भौतिक रूप में न रहकर भी उनका आदर्श भारतीयों को युगों-युगों तक देशप्रेम, स्वतन्त्रता अनुराग, संघर्ष आदि की प्रेरणा देता रहेगा या हम यह कह सकते हैं कि अपने पंच शरीर से महाराणा प्रताप हमारे हृदयों में सदा-सर्वदा विद्यमान रहेंगे। अन्त में सुप्रसिद्ध राजनेता और साहित्यकार डॉ० सम्पूर्णानन्द के शब्दों में—

"कुछ लोगों के सम्बन्ध में लोक में ऐसा विश्वास है कि वह लोग सदा अमर हैं, अर्थात् एक कल्प तक जीवित रहेंगे। इस बात पर विश्वास करना असम्भव है। यह व्यक्ति उन लोगों से भी नहीं है, जो समाज में अवतरित पुरुषों या ऋषि-मुनियों में गिने जाते हों। उदाहरण के लिए अश्वत्थामा जैसे व्यक्ति के सम्बन्ध में किसी ऐसी विशेषता का चर्चा सुनने में नहीं आता, जो किसी भी अर्थ में लोकोत्तर हो। और यह बात तो सहज ही समझ में आ सकती है कि उनका लम्बा जीवन अपने लिए और दूसरों के लिए भारस्वरूप हो जाएगा। ऐसी अमरता यदि प्राप्त भी हो सकती हो, तो कौड़ियों के मोल भी लेने की वस्तु नहीं हो सकती।

"परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं, जिनको सच्चे अर्थों में अमर कहा जा सकता है। उनका पंच भौतिक शरीर तो नहीं रह जाता, परन्तु उनका यश-कार्य सैकड़ों, सहस्रों वर्षों तक, कभी-कभी ज्यों का त्यों बना रहता है, बल्कि सच तो यह है कि काल की गति के साथ-साथ उसके कलेवर में और वृद्धि हो जाती है। उसके सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएं बन जाती हैं और उसके जीवन चरित्र के मूल रूप में इस प्रकार घुल-मिल जाती हैं कि उसका अभिन्न अंग बन जाती हैं। ऐसे ही महापुरुषों में महाराणा प्रताप थे।...प्रताप की कीर्ति अमर है और देश-काल में अनेक परिवर्तनों के होने पर भी वह मनुष्यों को उस समय तक स्फूर्ति देती रहेगी, जब तक मानव समाज में ऊंचे चरित्र, त्याग, शौर्य और आत्मोत्सर्ग का आदर रहेगा।"

अष्टम अध्याय

महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी

महाराणा प्रताप का महाप्रयाण सिसोदिया राजवंश के उस गरिमामय इतिहास का भी अवसान है, जिसने विश्व के स्वाधीनतता प्रेमियों को एक आदर्श प्रेरणा दी है; उन्हे चमत्कृत किया है। एक कहावत है कि राग, साग और पाग कभी-कभी स्वत: ही बन जाते हैं। यहीं बात महापुरुषों के सन्दर्भ में भी लागू होती है। महाराणा प्रताप जैसे परम स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता प्रेमी बिरले ही पैदा होते हैं। यों सिसोदिया वंश को यह गौरव प्राप्त है कि उसमे बप्पा रावल, राणा कुम्भा, महाराणा हमीर, राणा सांगा, महाराणा प्रताप जैसे प्रेणास्पद वीरो ने जन्म लिया, किन्तु यह कोई प्राकृतिक नियम नहीं कि किसी वंश विशेष के सभी पुरुष गुणों मे समान ही हों। यही बात सिसोदिया वंश पर भी लागू होती है। महाराणा प्रताप के बाद इस वंश की गरिमामय परम्पराएं धूमिल पड़ने लगी। परवर्ती सिसोदिया नरेशों मे किसी में भी महाराणा प्रताप जैसी सकल्प शक्ति, स्वाधीनता अनुराग आदि के दर्शन नहीं होते।

'वीरविनोद' मे महाराणा प्रताप के बाद उनके पुत्र अमरसिंह से लेकर सज्जनसिंह (1859-84) के शासन तक का इतिहास दिया गया है। स्मरणीय है कि वीरविनोद के रचयिता चारण श्यामलदास महाराणा सज्जनसिंह के आश्रित थे। यहां इन सभी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

बाद में उसने शाहजादा खुर्रम को मेवाड़ जाने का आदेश दिया। खुर्रम एक योग्य और उत्साही युवक था। वह अमरसिंह को पहाड़ों में ही घुसकर ही पकड़ लेना चाहता था। अतः फरवरी 1614 को उसने अपनी सेना को चार भागों में विभक्त किया और उन्हें पहाड़ों की ओर जाने का आदेश दिया। ये चारों दल चल पड़े। इन्होंने मार्ग में पड़ने वाले स्थानों पर जो मिला, उसे नष्ट किया, बस्तियों को जला डाला, कई निर्दोष लोगों का मौत के घाट उतार दिया तथा अनेकों को बन्दी बना लिया।

अमरसिंह ने भी राजपूतों को दलों में विभक्त कर लिया और उन्हें ऐसे स्थानों पर नियुक्त कर दिया, जहां से मुगलों की पहाड़ों में घुसने की सम्भावना थी। इन दलों को आदेश दिया गया कि मुगलों को पहाड़ों में प्रवेश न करने दिया जाय। मुगलों का जोर बढ़ता जा रहा था। अतः अमरसिंह ने अपनी राजधानी चावण्ड छोड़ दी और ईडर को प्रस्थान किया। इस बीच उनकी कई टुकड़ियों का मुगलों से सामना हुआ। उनके कई हाथी लूट लिए गए। मुगल सैनिकों ने उन हाथियों को खुर्रम के पास भेज दिया। खुरम ने इन्हें अपने पिता जहांगीर के पास भेज दिया।

इन दीर्घकालीन संघर्षों से अमरसिंह के साथ ही उनके सहयोगी राजपूतों का जीवन भी अस्त-व्यस्त हो गया था, किन्तु सफलता की कोई आशा नहीं थी, अतः राजपूतों में भी एक निराशा और उदासीनता की भावना व्याप्त होने लगी थी। वे समय के साथ समझौता करते हुए अन्य राजपूतों के समान ही मुगलों से सन्धि कर लेना चाहते थे। कई सामन्तों ने अमरसिंह के सामने अपने ये विचार रखे। लम्बे विचार-विमर्श के पश्चात् अमरसिंह ने अब्दुल रहीम खानखाना को एक पत्र लिखा, जिसमें निम्न दोहा लिखा गया था—

गोड कछाहा रावठड़ गोखा जोख करन्त ।
कह जो खाना खान ने वनचर हुआ फिरन्त ॥

अर्थात् गोड, कछवाहा, राठौर आदि राजपूत नरेश मुगल अधीनता स्वीकार करके सुख से जीवन-यापन कर रहे हैं और मैं वनचरों की तरह वन-वन मारा फिर रहा हूं।

कर्णने खुर्रम के पास जाना चाहते थे, किन्तु अनेक राजपूत स्वयं उनके साथ चल पड़े। इनमें उनके तीन पुत्रों के साथ ही भीमसिंह, सूरजमल, बाघसिंह, सहसमल्ल के अतिरिक्त भी अन्य राजपूत भी थे। उनका खुर्रम से मिलन गोगूदा में हुआ। शहजादा खुर्रम ने स्वयं उनकी अगवानी की। अमरसिंह ने खुर्रम को अनेक भेंटें दीं। इसके बाद अमरसिंह अपने स्थान पर लौट आए। फिर कर्णसिंह को खुर्रम के पास भेजा गया। 18 फरवरी, 1615 को शहजादा खुर्रम युवराज कर्णसिंह को लेकर सम्राट् जहांगीर के पास अजमेर पहुंचा। जहांगीर ने कर्णसिंह को अनेक पुरस्कार दिए और पांच हजारी मनसब प्रदान किया। इसके बाद कर्णसिंह उदयपुर लौट आया।

इन बदली हुई राजनैतिक परिस्थितियों में कर्णसिंह के उदयपुर पहुंचने पर सगर परिवार सहित चित्तौड़ छोड़कर बादशाह के पास जा पहुंचा। बादशाह ने उसे रावत की उपाधि और मदौरा परगना की जागीर प्रदान की। इस प्रकार हम देखते हैं कि अमरसिंह ने मुगलों से यथासम्भव संघर्ष किया, किन्तु उनमें महाराणा प्रताप के समान संकल्प शक्ति का अभाव था। अतः उन्होंने परिस्थितियों के सामने झुक जाना ही उचित समझा। मेवाड़ की उस गौरव-शाली परम्परा को उन्होंने विच्छिन्न कर दिया, जो शताब्दियों से अनवरत रूप से चली आ रही थी। उन्होंने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। 30 अक्टूबर, 1620 को उदयपुर में उनका देहान्त हो गया।

महाराणा कर्णसिंह

अमरसिंह की मृत्यु के पश्चात् 7 फरवरी 1620 को उनके ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। वस्तुत: मुगल अधीनता स्वीकार करने के पीछे कर्णसिंह की ही भूमिका प्रमुख रही थी। कर्णसिंह का शासन प्रबन्ध सर्वथा सन्तोषजनक था। जहांगीर से मन-मुटाव होने पर शहजादा खुर्रम उदयपुर में ही रहा। 1626 ई० में खुर्रम और जहांगीर में सुलह हो गई थी। अतः

खुर्रम ने दाराशिकोह और औरंगजेब अपने इन दो पुत्रों को जहांगीर की सेवा में भेज दिया। इसके पश्चात् जहांगीर की मृत्यु हो जाने पर जब खुर्रम दक्षिण से गुजरात होता हुआ आगरे जा रहा था, तो वह गोगूंदे में ठहरा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कर्णसिंह और खुर्रम के सम्बन्ध बड़े आत्मीयतापूर्ण थे। इसके बाद जब खुर्रम आगरे को चल पड़ा, तो कर्णसिंह ने अपने छोटे भाई अर्जुनसिंह को उसके साथ भेज दिया और स्वयं उदयपुर चले आए। इसके तुरन्त ही बाद कर्णसिंह का देहान्त हो गया।

महाराणा जगतसिंह प्रथम

कर्णसिंह के बाद 9 मई 1928 को जगतसिंह प्रथम मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठे। कहा जाता है कि वह बाल्यकाल से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के थे। देवलिया, डूंगरपुर, सिरोही पर सैनिक कार्यवाही और बांसवाड़े के रावल पर जुर्माना आदि उनके जीवन के मुख्य कार्य रहे।

सन् 1652 में वह तीर्थयात्रा पर जाना चाहते थे, कि इसी वर्ष 25 अक्तूबर को उनका देहान्त हो गया।

महाराणा राजसिंह प्रथम

14 फरवरी 1653 को मेवाड़ के राजसिंहासन पर महाराणा राजसिंह प्रथम का राज्याभिषेक हुआ। इस अवसर पर सम्राट शाहजहां ने भी टीके का दस्तूर भेजा था। यद्यपि अब मेवाड़ का राजवंश मुगलों के अधीन हो चुका था, तथापि महाराणा राजसिंह वास्तविक अर्थों में महाराणा प्रताप के आदर्शों पर चलने वाले एक स्वाभिमानी सिसोदिया नरेश थे। वह वास्तव में अमरसिंह

द्वारा मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के कलंक को धो डालना चाहते थे।

सिंहासन पर बैठते ही राजसिंह ने चित्तौड़ के दुर्ग की नेओं में मरम्मत करानी प्रारम्भ कर दी। इसी समय मुगल सम्राट के मुलाजिमों द्वारा मालवा और अजमेर के मन्दिरों में गोवध आदि की घटनाओं ने भी महाराणा के आक्रोश की आग में घी का काम किया। उनके सेवकों ने भी मुगलों के साथ छेड़-छाड़ आरम्भ कर दी। शाहजहां को सूचना मिली कि राजसिंह मुगल सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने की तैयारी कर रहे हैं। अत: लोहे का लोहा काटता है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर शाहजहां ने राजसिंह के चाचा गरीबदास को सात सौ का मनसब और जागीर प्रदान की तथा एक सेना के साथ राजसिंह के विरुद्ध भेजा। स्मरणीय है कि गरीबदास उन दिनों मुगल दरबार में ही थे। गरीबदास जब मेवाड़ पहुंचे तो उन्होंने राजसिंह के विरुद्ध युद्ध नहीं किया और सीधे राजसिंह के पास पहुंचे तथा उन्हें सभी बातों से अवगत कराया। राजसिंह ने उन्हें अपना परामर्शदाता बना लिया।

16 अक्टूबर 1654 को शाहजहां अजमेर में चिश्ती की दरगाह की जियारत करने के बहाने मेवाड़ अभियान पर चल पड़ा। उसने एक ओर तीस हजार घुड़सवार सैनिकों के साथ मीरजी सादुल्ला खां को चित्तौड़ की ओर भेज दिया और साथ ही मुंशी चन्द्रभान नामक एक ब्राह्मण को दूत बनाकर राजसिंह को समझाने के लिए भी भेजा, ताकि अनावश्यक रक्तपात से बचा जा सके। जब सादुल्ला खां चित्तौड़ पहुंचा, तो उसे चित्तौड़ का किला खाली मिला। राजसिंह किला पहले ही खाली करा चुके थे। उन्होंने सारी प्रजा को पहाड़ों में भेजकर चित्तौड़ को उजाड़ना प्रारम्भ कर दिया था।

जब चन्द्रभान महाराणा राजसिंह के पास पहुंचा, तो महाराणा ने उसका यथोचित स्वागत-सम्मान किया। चन्द्रभान ने महाराणा को अनेक प्रकार से समझाया। उसने परामर्श दिया कि राजकुमार को बादशाह के पास भेजा जाए। इसी में मेवाड़ का हित है। दोनों के बीच इस विषय में लम्बा वार्तालाप हुआ। अतः कुंवर सुल्तानसिंह को दाराशिकोह के पास भेज दिया गया। इस समय कुंवर सुल्तानसिंह की अवस्था 5-6 वर्ष की थी। दाराशिकोह ने कुंवर सुल्तानसिंह को बादशाह के पास भेजा। यह 2 दिसम्बर, 1654 को शाहजहां के समक्ष

था। 23, जनवरी 1659 को उसने भी राजसिंह से सहायता माँगने के लिए उन्हें पत्र लिखा। राजसिंह दारा को बादशाह [illegible] करना चाहते थे, क्योंकि इसीलिए उन्होंने दाराशिकोह को पत्र उत्तर नहीं दिया। इस समय मांडलगढ़ और बदनौर उनके अधिकार में आ चुके थे। औरंगजेब भी उन्हें इस प्रकार से प्रसन्न रखना चाहता था अतः उसने डूंगरपुर बांसवाड़ा, सलूम्बर, बसावर आदि पर भी महाराणा के अधिकार को स्वीकार कर लिया। इसके लिए उसने बाकायदा फर्मान भेज दिया।

उचित अवसर देखकर महाराणा ने अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। इसी क्रम में उन्होंने बाँसवाड़े को अपने अधिकार में करने के लिए सेना भेज दी। बाँसवाड़े के रावल समरसिंह ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली। उसने हर्जाने के रूप में मेवाड़ को दस लाख रुपया [illegible] दस लाख रुपये दिए। मेवाड़ के सेनापति फतहचन्द ने केवल बीस हजार रुपये लेकर शेष सभी रुपये और गाँव रावल समरसिंह को लौटा दिए। इसके बाद वह महाराणा के पास लौट आया। बाँसवाड़ा के बाद मेवाड़ की सेना ने डूंगरपुर प्रस्थान किया। वहाँ के रावल गिरिधर ने भी मेवाड़ की अधीनता स्वीकार कर ली।

इस समय पिता शाहजहाँ को बन्दी बनाने और भाइयों की हत्या करने के बाद औरंगजेब मुगल सम्राट बन चुका था। अतः उसे प्रसन्न करने के लिए राजसिंह ने उसके पास भेंट स्वरूप एक हथिनी तथा जवाहरात आदि भेजे। उन उपहारों को लेकर उदयकर्ण चौहान 9 सितम्बर, 1659 को औरंगजेब के पास दिल्ली पहुँचा। इन भेंटों को औरंगजेब ने प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया और उसने स्वयं भी उदयकर्ण चौहान द्वारा महाराणा राजसिंह के लिए एक घोड़ा तथा जाड़ों की खिलअत भेजी।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि इस समय तक महाराणा राजसिंह के औरंगजेब के साथ सम्बन्ध सद्भावनापूर्ण रहे, किन्तु औरंगजेब जैसे कट्टर और संकीर्ण सम्राट के साथ किसी भी उदार एवं स्वाभिमानी शासक के सम्बन्धों का सदा के लिए सद्भावनापूर्ण रह पाना सम्भव नहीं था। कहने की आवश्यकता नहीं कि शीघ्र ही औरंगजेब के साथ उनके सम्बन्ध कटुतापूर्ण हो गए। सम्राट

उसे उस समय महाराणा ने स्वीकार कर लिया।

औरंगजेब के साथ उनके सरदारों के पुत्र मुराद आता था न आता, इस
समय औरंगजेब ने हिन्दुओं पर जजिया कर लगा दिया। राजसिंह ने इस
हिन्दुओं के प्रति इस धार्मिक अत्याचार सहा। पर उन्होंने विनम्र होकर औ
उचित ठहराते हुए औरंगजेब को पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने लिखा था
कि ईश्वर के सामने हिन्दू और मुसलमान दोनों समान हैं। सम्राट इनका प्रति
निधि होता है। अतः ईश्वर के नाम पर इस प्रकार का पक्षपात दिखाना अनु
चित है। इससे सम्राट का पद दूषित हो जायगा। इस पत्र के प्राप्त होने प
से पढ़ते ही औरंगजेब आग-बबूला हो गया। उसने तुरन्त उदयपुर पर हमल
करने का आदेश दे दिया। 15 सितम्बर 1679 को उसने सेना सहित उदयपु
के लिए प्रस्थान किया। 18 जनवरी 1680 को मुगल सेना मेवाड़ पहुंच गई
सेना पहुंचने पर राणा ने उदयपुर पर ध्वंस करने का आदेश दे दिया गया।

महाराणा राजसिंह को जब औरंगजेब के कार्य-कलापों की सूचना मिली त
उन्होंने अपनी प्रजा, बच्चों तथा स्त्रियों को सुरक्षित देवी माता आदि पहाड़ों
भेज दिया और अपने सामन्तों, वीरों तथा भीलों को आज्ञा दी कि अवस
मिलते ही मुगल सेना को पहुंचने वाली सामग्री लूट ली जाए। मुगल सेनापति
ने यह बात औरंगजेब को बताई। यक्का, ताज खां आदि मुगल सेनाप
हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ते हुए उदयपुर पहुंचे। 27 जनवरी को मुगल शा
जादा अकबर एक विशाल सेना लेकर चल पड़ा। महाराणा का पीछा करने
लिए उसने सेना को पहाड़ों की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी। 5 मा
को औरंगजेब ने भी चित्तौड़ की ओर प्रस्थान किया। उसने 63 मन्दिर तुड़
डाले। फिर खानेजहां नामक सेनापति चित्तौड़ पहुंच गया। इसके पश्चा
शहजादा अकबर को आदेश मिला कि वह सेना सहित चित्तौड़ के किले में पड़
डाले। अत अकबर चित्तौड़ के किले में रहने लगा। राजपूतों की मुगलों
साथ कई बार भयंकर लड़ाइयां हुईं और कई बार मुगल सेना को मुंह की खा
पड़ी, किन्तु अन्ततः पलड़ा मुगलों का ही भारी रहा।

इसके पश्चात् अपने स्थान पर शहजादा अकबर को नियुक्त कर औरंगजे
अजमेर चला गया। महाराणा राजसिंह वास्तविक अर्थों में महाराणा प्रताप

स्वाभिमानी थे। वे और [illegible] मुगलों से संघर्ष करते रहे। उनका शासन [illegible] की होती है, [illegible]। उन्होंने मन से कभी शासन स्वीकार नहीं की। इस महान [illegible] प्रेमी वीर की मृत्यु 3 नवम्बर 1680 को कुम्भलगढ़ [illegible] में हुई। उनकी मृत्यु बिना किसी अस्वस्थता के सहसा ही हुई थी। अतः इस विषय में यह भी कहा जाता है कि उन्हें विष दिया गया था क्योंकि उनका व्यवहार अत्यन्त [illegible] था। अतः सभी लोग उनसे नाराज रहते थे। जो भी हो इतना निश्चित है कि महाराणा राजसिंह एक स्वाभिमानी व [illegible] के धनी राजपूत शासक थे। उन्होंने मेवाड़ के अस्त हुए सूर्य को पुनः प्रतिष्ठित करने का जो प्रयत्न किया था, वह सर्वथा प्रशंसनीय कार्य है। यद्यपि उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली, फिर भी उससे उनके कार्य का महत्त्व कम नहीं होता है। यदि उन्हें अपने कार्यों में सफलता मिल गई होती, तो न जाने मेवाड़ और भारत का इतिहास आज किस रूप में होता।

महाराणा जयसिंह

राजसिंह के देहान्त के समय जयसिंह कुरज गाव में मुगल सेना का सामना कर रहे थे। वहीं 3 नवम्बर को उनका अभिषेक किया गया। उनका जन्म 15 फरवरी 1653 को हुआ था। उनके महाराणा बनने के साथ ही लगभग उसी समय शहजादा अकबर ने औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह कर स्वय को सम्राट घोषित कर दिया था। राजपूत भी इस कार्य में उसका साथ दे रहे थे। उसके पास 70 हजार से अधिक सेना हो गई थी। औरंगजेब के आने का समाचार सुन वह सामना करने को तैयार हो गया। इस अवसर पर औरंगजेब ने बड़ी कूटनीति से काम लिया। उसने अकबर के नाम एक पत्र लिखा और बड़ी धूर्तता के साथ यह पत्र राजपूतों के हाथों पहुंचा दिया। पत्र को पढ़कर राजपूत समझ बैठे कि अकबर औरंगजेब के कहने पर उनके साथ धोखा कर

गया है। औरंगजेब की कुमक काम कर गई। अन्त 28 जनवरी 1631 को अकबर भाग गया हुआ। इसके पश्चात जयसिंह और औरंगजेब में सुलह हो गई।

सिसोदिया वंश प्रताप नहीं थे किन्तु जयसिंह के बड़े पुत्र अमरसिंह की पुत्र प्राप्ति उमराव की पत्नी थी। इसी अमरसिंह को जो बुरी आदत लग गई। अमरसिंह शराब पीने लगा। इसमें जयसिंह का बड़ा निराशा हुई। उन्होंने अमरसिंह को डांटा, किन्तु इसका अमरसिंह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके बाद जयसिंह को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगा। राजघराने की एक प्रथा के अनुसार पिता के जीवित रहते पुत्र सफेद पगड़ी नहीं पहन सकता, किन्तु अमरसिंह एक बार अपने और अपने पुत्र के सिर में सफेद पगड़ी बांधकर पुत्र सहित जयसिंह के सामने पहुंचा। उस समय जयसिंह जलसमुद्र गये हुए थे। पुत्र के इस आचरण से उन्हें मानसिक वेदना हुई। अतः उन्होंने अमरसिंह को उदयपुर छोड़ देने की आज्ञा दे दी। अमरसिंह उदयपुर के पूर्व में लगभग आठ कोस दूर सर्णपुर गांव चला गया। मेवाड़ के अधिकतर सामन्त अमरसिंह के पक्ष में थे। परिस्थिति को अपने प्रतिकूल देख जयसिंह को उदयपुर छोड़ना पड़ा। उदयपुर छोड़ने के बाद वह नाडौल के वन में चले गये। अमरसिंह ने हाडा राजपूतों से सहायता से अपने सिसोदिया राजपूतों को लेकर उदयपुर पर अधिकार कर लिया और अपना राज्याभिषेक कराने के बाद वह स्वयं महाराणा बन बैठा। इसके बाद वह जीलवाड़ा पहुंच गया।

अमरसिंह के इस कार्य से महाराणा जयसिंह का चिन्तित होना नितान्त स्वाभाविक था। घर की इस फूट का प्रत्यक्ष लाभ मुगलों को पहुंचता। इन सब पर विचार करते हुए जयसिंह के सामन्तों ने अमरसिंह को समझाने के लिए कुछ राजपूतों को भेजा। काफी समझाने के बाद अन्ततः राजकुमार अमरसिंह मान गया। उसे खर्च के लिए 3 लाख रु० वार्षिक की जागीर दी गई। इसके साथ ही यह भी तय हुआ कि महाराणा जयसिंह उदयपुर में रहेंगे और अमरसिंह राजनगर में। अतः तब से राजकुमार राजनगर में और महाराणा उदयपुर में रहने लगे। 1692 में अमरसिंह के इस विद्रोह का अन्त हुआ। महाराणा जयसिंह की मृत्यु 5 अक्टूबर 1698 को हुई।

महाराणा अमरसिंह द्वितीय

महाराणा जयसिंह की मृत्यु का समाचार पाते ही अमरसिंह उदयपुर की ओर चल पड़े। उदयपुर पहुंचने पर 10 अक्टूबर को वह मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने अपने विरोधियों को भी इस अवसर पर पुरस्कार देकर अपना मित्र बना लिया।

वीरविनोदकार महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदास ने लिखा है कि 1708 ई० में जोधपुर और जयपुर के नरेश उदयपुर आये। दोनों ने महाराणा अमरसिंह के सामने प्रस्ताव रखा कि सभी राजपूत नरेश अमरसिंह के पक्ष में मुगल साम्राज्य को नष्ट कर दें और उन्हें (अमरसिंह को) भारत का सम्राट् बनाएं। इसके अतिरिक्त उनमें राजपूत राजकुमारियों की डोलियां मुगलों के यहां न भेजने के विषय में भी चर्चा हुई।

22 दिसम्बर 1710 को महाराणा अमरसिंह द्वितीय का स्वर्गलोक गमन हुआ। उनका जन्म 11 नवम्बर 1672 को हुआ था।

महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय

22 दिसम्बर 1710 को महाराणा संग्रामसिंह का राज्याभिषेक हुआ। अभिषेक का महोत्सव 8 मई 1711 को मनाया गया।

मुगल सम्राट् ने पुर माण्डल आदि का अधिकार रणबाज खां मेवाती को दे दिया था, अतः महाराणा संग्रामसिंह ने उस पर (रणबाज खां) आक्रमण कर दिया और विजय प्राप्त की। माधवसिंह का उदयपुर आना आदि संग्रामसिंह के शासन के समय की घटनाएं हैं।

उक्त घटनाओं के अतिरिक्त महाराणा संग्रामसिंह के जीवन में अन्य कोई विशेष उपलब्धि नहीं रही। उनका देहान्त 23 जनवरी 1734 ई० में दिन हुआ था। उनका जन्म 1 अप्रैल 1690 को हुआ था। [illegible]

महाराणा प्रतापसिंह द्वितीय

महाराणा प्रतापसिंह द्वितीय का राज्याभिषेक 15 जून 1751 ई० को हुआ। [illegible] अगस्त 1724 को हुआ था। इनकी माँ [illegible] की पुत्री थी। [illegible] महाराणा जगतसिंह [illegible] बीमार थे तो [illegible], देवगढ़ के रावत [illegible], देलवाड़ा के राज [illegible] और शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह ने इन्हें [illegible] किया था, क्योंकि वे प्रतापसिंह को महाराणा नहीं बनाना चाहते थे किन्तु महाराणा जगतसिंह ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। महाराणा बनते ही प्रतापसिंह ने इन सभी को अपना [illegible] किया। कहा जाता है कि प्रतापसिंह बहादुर, बुद्धिमान और वीर थे।

महाराणा प्रतापसिंह द्वितीय की मृत्यु जनवरी 1754 ई० में हुई। इनकी चार रानियाँ थीं, पहली रानी महाराणा के जीवन में ही परलोक सिधार गई थीं। दूसरी रानी [illegible] और तीसरी [illegible] पति के साथ सती हुईं। चौथी रानी [illegible] से राजसिंह का जन्म हुआ।

महाराणा राजसिंह द्वितीय

प्रतापसिंह द्वितीय के बाद राजसिंह द्वितीय मेवाड़ के महाराणा बने। उनका राज्याभिषेक 10 जनवरी 1764 को हुआ। उनका जन्म 17 मई 1754 ई० को हुआ तथा सिंहासन पर बैठते समय उनकी अवस्था केवल दस वर्ष थी। उस समय मराठों का पूरे उत्तरी भारत में ज़ोर था अल्पवयस्क महाराणा के कारण राज्य में बड़ी अव्यवस्था फैल गई। अतः राज्य में मराठों का दबदबा हो गया। प्रतापसिंह के शासनकाल में राजा माधोसिंह को उदयपुर छोड़ना पड़ा था, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद वह भी उदयपुर आ गया। इन्हीं दिनों सिंधिया ने मारवाड़

पर चढ़ाई कर दी। रावत जैतसिंह को उदयपुर से सुलह के लिए सिंधिया के पास भेजा गया। उसी समय एक खोखर राजपूत ने सिंधिया को धोखे से मार डाला। इससे मराठे यह समझ बैठे कि यह कार्य उदयपुर वालों का है। अतः मराठों ने जैतसिंह पर चढ़ाई कर दी। जैतसिंह आदि अनेक वीर मार डाले गये। इससे उदयपुर वालों को भारी दुःख हुआ। उसी समय शाहपुरा के [illegible] नामक ने उदयपुर की अधीनता स्वीकार कर ली।

महाराणा राजसिंह द्वितीय की मृत्यु 3 अप्रैल 1761 को हुई।

महाराणा अरिसिंह तृतीय

बहुत कम अवस्था में राजसिंह की मृत्यु हो जाने से राज्य में सन्नाटा छा गया। उनका कोई उत्तराधिकारी भी नहीं रह गया था। अतः महाराणा जगतसिंह द्वितीय के छोटे पुत्र अरिसिंह तृतीय को मेवाड़ के सिंहासन पर बैठाया गया। यह राज्याभिषेक 3 अप्रैल 1761 को हुआ।

अरिसिंह तृतीय एक उद्दण्ड स्वभाव का राजा था। एक बार जब महाराणा एकलिंग के दर्शनों को जा रहे थे, तो सामने से आती सामन्तों की सेना की टुकड़ियों को रास्ता छोड़ने का आदेश दिया, किन्तु रास्ता इतना तंग था कि ऐसा करना सम्भव नहीं था। अतः अरिसिंह की आज्ञा से सामन्तों पर डण्डे बरसाये गये। उसने प्रशासनिक पदों में भी फेर बदल किया। इससे और भी अव्यवस्था फैलने लगी।

जनवरी 1769 में मराठों ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। तीन दिन के युद्ध के बाद 16 जनवरी को मेवाड़ के वीरों ने प्राणों पर खेलकर युद्ध किया और मराठे भाग गये। कहा जाता है कि यह मेवाड़ की [illegible] युद्ध था। बाद में महाराणा और मराठों के सम्बन्धों में सुधार [illegible] था। 9 मार्च 1773 को अरिसिंह तृतीय का देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु बूंदी के राजा अजीतसिंह के द्वारा विश्वासघात से हुई।

महाराणा भीमसिंह द्वितीय

इतनी कम अवस्था में हमीरसिंह की मृत्यु हो जाने से सारा मेवाड़ शोक में डूब गया। अतः 7 जनवरी 1778 को हमीरसिंह के दस वर्षीय छोटे भाई भीमसिंह को मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठाया गया, उनका जन्म 10 मार्च 1768 को हुआ था। भीमसिंह के महाराणा बनने पर मराठों ने मेवाड़ में और अधिक तबाही मचा दी। राज्य के अनेक जिले भी हाथ से निकल गये, सामन्त और जागीरदार मनमानी करने लगे और जगह-जगह विद्रोह होने लगे।

जनवरी 1788 में मराठों की सेना मन्दसौर से मेवाड़ पर, चढ़ाई करने के लिए चल पड़ी। कई राजपूत वीरों ने मिलकर मराठों का सामना किया, जिसमें अनेक वीर मारे गये, कुछ घायल हुए तथा अन्य बन्दी बना लिए गये। कुल मिलाकर भीमसिंह का शासन अशान्तिमय रहा, उनके जीवनकाल में ही

उनके ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह की मृत्यु हो गई थी। अन्त में ३० मार्च 1828 को भीमसिंह भी इस संसार से चल बसे।

महाराणा जवानसिंह

महाराणा भीमसिंह के स्वर्गवास के बाद 31 मार्च 1828 ई० को उनके पुत्र जवानसिंह मेवाड के महाराणा बने। महाराणा जावानसिंह का जन्म 18 नवम्बर 1800 ई० को हुआ था। वह बडे पितृ-भक्त, उदार तथा प्रजा से स्नेह करने वाले थे। उनके कर्मचारी आय-व्यय का सही विवरण नहीं देते थे। महाराणा उनकी बातो पर विश्वास कर लेते थे। नाथद्वारा वालो का खुद-मुख्तार बनने के लिए एजेंन्ट गवर्नर-जनरल राजपूताना से पत्र-व्यवहार आदि, अजमेर में गवर्नर जनरल से भेंट, शाहपुरा से अंग्रेजो की जब्ती उठाना, कोटा तथा जयपुर के राजाओं से मुलाकात, बम्बई प्रान्त के गवर्नर का उदयपुर आगमन, आदि महाराणा जवानसिंह के शासनकाल की मुख्य घटनायें हैं।

24 अगस्त 1838 की रात्रि जवानसिंह अपने महल में लेटे थे, तो उनके सिर में असह्य वेदना होने लगी। अनेक उपचार कराने के बाद भी 30 अगस्त को उनका स्वर्गवास हो गया।

महाराणा सरदारसिंह

महाराणा जवानसिंह का कोई पुत्र नहीं था। अत: मेवाड़ के सामन्तो ने परस्पर विचार-विमर्श कर 7 सितम्बर 1838 को सरदारसिंह को मेवाड़ का महाराणा बनाया। उनका जन्म 29 अगस्त 1798 को हुआ था। सरदारसिंह का राज्याभिषेक होते ही मेवाड में आन्तरिक कलह की नींव पड गई। कुछ लोग

हाराणा सज्जनसिंह

महाराणा शम्भूसिंह निःसन्तान स्वर्ग सिधारे थे। अतः बेदला के राव ्तसिंह ने शक्तिसिंह के पुत्र सज्जनसिंह को मेवाड़ का महाराणा बनाने का स्ताव रखा। उसके इस प्रस्ताव को प्रायः सभी ने स्वीकार कर लिया। जमहल के रनिवास से भी इसके लिए स्वीकृति मिल गई। अतः 8 अक्टूबर

[illegible]

1. गुहादित्य द्वारा मेवाड़ राजवंश की स्थापना	छठी शताब्दी ई०
2. बप्पा रावल का शासन काल	734-53 ई०
3. खुमाण द्वितीय का शासनकाल	812-36 ई०
4. हमीर का शासनकाल	1326-64 ई०
5. लाखा का राज्यारोहण	1382 ई०
6. मोकल का राज्यारोहण	1428 ई०
7. महाराणा कुम्भा का सिंहासनारोहण	1433 ई०
8. रायमल का मेवाड़ पर अधिकार	1473 ई०
9. राणा सांगा का अभिषेक	1508 ई०
10. रत्नसिंह का राज्यारोहण	1528 ई०
11. विक्रमाजीत का राज्यारोहण	1531 ई०
12. वनवीर का राजा बनना	1536 ई०
13. उदयसिंह का अभिषेक	1540 ई०
14. महाराणा प्रताप का जन्म	
वीरविनोद के अनुसार	31 मई, 1539 ई०
नैनसी के अनुसार	4 मई, 1540 ई०
कर्नल टॉड के अनुसार	9 मई, 1549 ई०
15. प्रताप का राज्याभिषेक	28 फरवरी, 1572 ई०
16. जलाल खां कोरची द्वारा सन्धि प्रस्ताव	सितम्बर, 1572 ई०
17. मानसिंह द्वारा सन्धि प्रस्ताव	1573 ई०
18. भगवानदास द्वारा सन्धि प्रस्ताव	सितम्बर-अक्टूबर 1573 ई०

परिशिष्ट–2

श्रीमद्भागवत में मेवाड़ का राजवंश

भारत के अनेकों अन्य राजवंशों की तरह मेवाड के राजवंश का सम्बन्ध भी प्राचीन इक्ष्वाकु वंश से माना जाता है। विभिन्न पुराणों में इनकी वंशावलियों में पर्याप्त विभिन्नता है। इन वंशावलियों को पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माना जाता। आधुनिक विद्वानों का तो यह भी मत है कि कालान्तर में इन भारतीय राजवंशों ने अपने वंश का सम्बन्ध प्राचीन सूर्य एवं चन्द्रवंश से सिद्ध करने के लिए इन पुराणों की वंशावलियों को मनमाने ढंग से बनाया है। इनकी प्रमाणिकता या अप्रमाणिकता सिद्ध करना यहाँ हमारा कार्य नहीं है। हम केवल पाठकों के ज्ञान मात्र के लिए श्रीमद्भागवत के आधार पर सिसोदिया वंश की प्राचीन वंशावली को उद्धृत कर रहे हैं, जो निम्न प्रकार से है—

1. आदि नारायण
2. ब्रह्मा
3. मरीचि
4 कश्यप
5. विवस्वान (सूर्य)
6. वैवस्वत मनु
7. इक्ष्वाकु
8. विकुक्षि
9. पुरञ्जय (ककुत्स्थ)
10 अनेना (वेन)
11. पृथु
12. विश्वरंधि
13. चन्द्र

19. टोडरमल द्वारा संधि प्रस्ताव	दिसम्बर, 1573 ई०
20. अकबर का अजमेर पहुंचना	मार्च, 1576 ई०
21. मानसिंह का मेवाड़ प्रस्थान	3 अप्रल, 1576 ई०
22. हल्दीघाटी युद्ध	21, जून, 1576 ई०
23. गोगूदा पर मुगल अधिकार	23 जून, 1576 ई०
24. महाराणा का गोगूदा वापस लेना	जुलाई, 1576 ई०
25. अकबर का मेवाड़ पहुंचना	13 अक्टूबर, 1576 ई०
26. उदयपुर-गोगूंदा पर पुनः प्रताप का अधिकार	मई-जून, 1577 ई०
27. शाहबाज खा मेवाड़ अभियान पर	अक्टूबर, 1577 ई०
28. कुम्भलगढ़ पर मुगल अधिकार	13 अप्रल, 1578 ई०
29. उदयपुर पर पुनः मुगल अधिकार	14 अप्रल, 1578 ई०
30. शाहबाज खां का द्वितीय मेवाड़ अभियान	15 दिसम्बर, 1578 ई०
31. चन्द्रसेन का मुगलों के विरुद्ध विद्रोह	दिसम्बर 1578 ई०
32. शाहबाज खां का तृतीय मेवाड़ अभियान	9 नवम्बर, 1579 ई०
33. खानखाना मेवाड़ अभियान पर	जून, 1580 ई०
34. जगन्नाथ कछवाहा मेवाड़ अभियान पर	6 दिसम्बर 1584 ई०
35. मेवाड़ की पुनः स्वायत्तता	1585 ई०
36. महाराणा प्रताप का देहावसान	19 जनवरी, 1597 ई०

परिशिष्ट-2

श्रीमद्भागवत में मेवाड़ का राजवंश

भारत के अनेकों अन्य राजवंशों की तरह मेवाड़ के राजवंश का सम्बन्ध प्राचीन इक्ष्वाकु वंश से माना जाता है। विभिन्न पुराणों में इनकी वंशावलियों में विभिन्नता है। इन वंशावलियों को पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माना जाता। आधुनिक विद्वानों का तो यह भी मत है कि कालान्तर में इन भारतीय वंशों ने अपने वंश का सम्बन्ध प्राचीन सूर्य एवं चन्द्रवंश से सिद्ध करने के लिए पुराणों की वंशावलियों को मनमाने ढंग से बनाया है। इनकी प्रमाणिकता अप्रमाणिकता सिद्ध करना यहां हमारा कार्य नहीं है। हम केवल पाठकों के ज्ञान मात्र के लिए श्रीमद्भागवत के आधार पर सिसोदिया वंश की प्राचीन वंशावली को उद्धृत कर रहे हैं, जो निम्न प्रकार से है--

1. आदि नारायण
2. ब्रह्मा
3. मरीचि
4. कश्यप
5. विवस्वान (सूर्य)
6. वैवस्वत मनु
7. इक्ष्वाकु
8. विकुक्षि
9. पुरञ्जय (ककुत्स्थ)
10. अनेना (वेन)
11. पृथु
12. विश्वरंधि
13. चन्द्र

42. सगर
43 असमञ्जस
44 अंशुमान
45. दिलीप
46. भगीरथ
47 श्रुत
48 नाभ
49 सिन्धु द्वीप
50. अयुतायु
51 ऋतुपर्ण
52 सर्वकाम
53 सुदास
54 मित्रसह (कल्माषपाद)
55 अश्मक
56 मूलक (नारीकवच)
57 दशरथ (प्रथम)
58 ऐडविड
59 विश्वसह
60. खटवांग
61. दीर्घबाहु (दिलीप)
62 रघु
63. अज
64 दशरथ (द्वितीय)
65 रामचन्द्र
66. कुश
67. अतिथि
68. निषध
69. नभ

70. पुण्डरीक
71. क्षेमधन्वा
72. देवानीक
73. अहीनगु
74. परियात्र
75. बल
76. स्थल
77. वज्रनाभ
78. खगण
79. विधृति
80. हिरण्यनाभ
81. पुष्य
82. ध्रुव सन्धि
83. सुदर्शन
84. अग्निवर्ण
85. शीघ्र
86. मरु
87. प्रसुश्रुत
88. सन्धि
89. अमर्षण
90. महस्वान
91. विश्वसह
92. प्रसेनजित (प्रथम)
93. तक्षक
94. बृहद्बल
95. बृहद्रण
96. उरुक्रिय
97. वत्सवृद्ध

98. प्रतिव्योम
99. भानु
100 दीवाक्
101. सहदेव
102. बृहदश्व
103. भानुमान
104 प्रतीकाश्व
105. सुप्रतीक
106. मरुदेव
107. सुनक्षत्र
108. पुष्कर
109 अन्तरिक्ष
110. सुतपा
111. अमित्रजित
112 बृहद्राज
113. बर्हि
114. कृतञ्जय
115. रणञ्जय
116. सञ्जय
117. शाक्य
118. शुद्धोद
119. लांगल
120. प्रसेनजित (द्वितीय)
121. शूद्रक
122. रणक
123. सुरथ
124 सुमित्र